मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 22 • वर्ष 3 • अंक 4 • जून 2013 • पाँच रुपये • सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

शोषण का पहिया
मारुति सुजुकी में मज़दूर संघर्ष और अधिकारों के हनन पर पीयूडीआर की रिपोर्ट 5

जनवादी अधिकारों के लिए आन्दोलन और मज़दूर वर्ग 12

साहसपूर्ण संघर्ष और क़ुर्बानियों के बावजूद

क्यों ठहरावग्रस्त है मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन?

सम्पादकीय अग्रलेख

मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का संघर्ष पिछले 8 माह से जारी है। 18 जुलाई को मारुति सुज़ुकी के मानेसर संयंत्र में हुई हिंसा की घटना के बाद बिना किसी जाँच के मज़दूरों को कम्पनी और प्रशासन दोनों के ही द्वारा निशाना बनाया गया। एक ओर कम्पनी ने 546 स्थायी मज़दूरों और 1800 ठेका/प्रशिक्षु मज़दूरों को निकाल बाहर किया, तो वहीं हरियाणा सरकार ने इस घटना के लिए क़रीब सवा दो सौ मज़दूरों के ख़िलाफ़ चार्जशीट तैयार की और कुछ ही दिनों के भीतर क़रीब 147 मज़दूरों को गिरफ़्तार कर लिया। इस दौरान पूँजीवादी मीडिया भी बिना किसी जाँच-पड़ताल के मज़दूरों के ख़िलाफ़ अपना फ़ैसला सुनाते हुए उन्हें अपराधी और हत्यारा क़रार दे रहा था। शुरुआती कुछ दिनों तक तो हरियाणा प्रशासन ने मारुति सुज़ुकी के मालिकान और मैनेजमेण्ट के हितों की नंगे तौर पर नुमाइन्दगी करते हुए मज़दूरों के ख़िलाफ़ आतंक का राज्य स्थापित किया और उनके ख़िलाफ़ फ़ासीवादी क़िस्म की धरपकड़ चलायी। जब यह प्रक्रिया चल रही थी, तब भी मज़दूर अपने आपको पुनर्संगठित करने का प्रयास कर रहे थे और जब यह प्रक्रिया कुछ मद्धम हुई तो मज़दूरों ने फिर से संघर्ष शुरू करने की तैयारी शुरू कर दी। वास्तव में, कम्पनी और मैनेजमेण्ट मज़दूरों को निशाना बना ही इसलिए रहे थे कि स्वतन्त्र यूनियन और बेहतर कार्यस्थितियों के अधिकार की उनकी माँगों को लेकर उनका संघर्ष आगे न बढ़ पाये।

7-8 नवम्बर से मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का संघर्ष फिर से शुरू हुआ। **लेकिन पिछले 8 महीनों के बहादुराना संघर्ष के बावजूद आज मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन एक ठहराव का शिकार है। निश्चित तौर पर, आन्दोलन में मज़दूरों ने साहस और त्याग की मिसाल पेश की है। लेकिन किसी भी आन्दोलन की सफलता के लिए केवल साहस और क़ुर्बानी ही पर्याप्त नहीं होते।** उसके लिए एक सही योजना, सही रणनीति और सही रणकौशल होना भी ज़रूरी है। इनके बग़ैर चाहे संघर्ष कितने भी जुझारू तरीक़े से किया जाये, चाहे कितनी भी बहादुरी से किया जाये और चाहे उसमें कितनी ही क़ुर्बानियाँ क्यों न दी जायें, वह सफल नहीं हो सकता। यह एक कड़वी सच्चाई है कि आज मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का आन्दोलन भी ठहरावग्रस्त है। अगर हम इस ठहराव को ख़त्म करना चाहते हैं, तो पहले हमें इसके कारणों की तलाश करनी होगी। इस लेख में हम इन्हीं कारणों की पड़ताल करेंगे।

'मज़दूर बिगुल' ने हमेशा न सिर्फ़ अपनी शक्ति के अनुरूप मज़दूर आन्दोलनों में शिरकत की है, बल्कि 'मज़दूर बिगुल' ने मज़दूरों का एक राजनीतिक अख़बार होने के नाते हमेशा इस बात को अपना फर्ज़ माना है कि तमाम मज़दूर आन्दोलनों का अध्ययन करे, उनकी समीक्षा करे, उनका समाहार करे, विश्लेषण करे और मज़दूर आन्दोलन के नेतृत्व को अपने सुझाव और सलाह दे। 'मज़दूर बिगुल' ने मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन की प्रोविज़नल कमेटी को भी समय-समय पर आन्दोलन की रणनीति और रणकौशल के बारे में अपने सुझाव दिये हैं; कभी लिखित रूप में तो कभी मौखिक तौर पर।

आज एक बार फिर, जबकि मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन एक नाज़ुक मोड़ पर खड़ा है तो हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि संघर्ष में शामिल सभी साथियों के सामने अपने सुझावों, रायों, और आलोचनाओं को खोलकर रखें, क्योंकि अब बहुत लम्बा समय हमारे आन्दोलन के पास नहीं बचा है। या तो यह आन्दोलन अब एक सही रणनीति अपनाकर जो सम्भव है उसे हासिल करेगा और या फिर यह विसर्जित होने की ओर आगे बढ़ेगा। काफ़ी देर हो चुकी है और अब जितनी देर होगी, उतना ही हासिल किये जा सकने वाले लक्ष्यों का दायरा घटता जायेगा। इस लेख में हम सबसे पहले 7 नवम्बर को शुरू हुए आन्दोलन के नये चरण से लेकर अभी तक का एक संक्षिप्त ब्यौरा रखेंगे और उसके बाद आन्दोलन की कमियों-ख़ामियों के बारे में अपनी आलोचना और सुझाव पेश करेंगे, जिसमें हम यह स्पष्ट करने की कोशिश करेंगे कि आन्दोलन के ठहरावग्रस्त होने का कारण क्या है और इस ठहराव को, हमारी राय में, कैसे दूर किया जा सकता है।

7 नवम्बर 2012 से लेकर 11 जून 2013 तक मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन: एक संक्षिप्त ब्यौरा

7 नवम्बर से मज़दूरों ने अपनी यूनियन मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व में फिर से संघर्ष का बिगुल फूँका और कम्पनी और प्रशासन से यह माँग की कि वह गिरफ़्तार मज़दूरों को तत्काल रिहा करे, बर्ख़ास्त सभी मज़दूरों को वापस ले, ठेका मज़दूरों को स्थायी करे और 18 जुलाई की घटना की जाँच करवाये। 7 नवम्बर से ही यह संघर्ष जारी है और इसमें तमाम मील के पत्थर आये हैं। 13 नवम्बर को मारुति सुज़ुकी के संघर्षरत मज़दूरों ने काली दीवाली मनायी; इसके बाद फरीदाबाद में श्रम मन्त्री शिवचरण वर्मा के घर के बाहर प्रदर्शन हुआ; 09 दिसम्बर को दिल्ली में अम्बेडकर भवन में ऑटोवर्कर सम्मेलन और जन्तर-मन्तर तक रैली का आयोजन किया गया; इसके बाद जन्तर-मन्तर पर एक दिन का एक

(पेज 8 पर जारी)

नरेन्द्र मोदी का उभार और मज़दूर वर्ग के लिए उसके मायने

पिछले कुछ वर्षों से जारी मुहिम के बाद आख़िरकार अब नरेन्द्र मोदी को भारतीय जनता पार्टी की ओर से अगले लोकसभा चुनाव में प्रधानमंत्री के दावेदार के तौर पर पेश करने की कवायद औपचारिक रूप से शुरू हो गयी है। बड़े पूँजीपतियों से लेकर मध्यवर्ग के अलग-अलग हिस्सों तक में इस बात को लेकर काफ़ी उत्साह नज़र आ रहा है। मोदी को ऐसे नेता के रूप में उभार जा रहा है जो दृढ़ता से सख़्त निर्णय ले सकता है और ढुलमुल और भ्रष्ट नेताओं के कारण डगमगाती देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाकर भारत को चीन-जापान-अमेरिका की टक्कर में ला खड़ा करेगा।

मोदी ने ऐसी उम्मीदों को सही ठहराने के लिए अब तक किया क्या है? सबसे बड़ी "दृढ़ता" मोदी ने 2002 के गुजरात दंगों के समय दिखायी थी जब राज्य द्वारा प्रायोजित सुनियोजित हिंसा में हज़ारों बेगुनाह मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया गया था। तहलका के स्टिंग ऑपरेशन से लेकर अनेक जाँचों में यह सच्चाई सामने आ चुकी है कि किस तरह हिंसा और बलात्कार कर रही बर्बर भीड़ को सीधे ऊपर से पुलिस-प्रशासन की शह मिली हुई थी। मगर इससे भी बढ़कर टाटा-बिड़ला-अम्बानी से लेकर देश के तमाम बड़े उद्योगपतियों और सुज़ुकी जैसी विदेशी

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

कथित आज़ादी औरतों की

हमारे परम मित्र विशाल दिल के बहुत अच्छे हैं। बोल-चाल का लहज़ा भी आपका नायाब है। राह चलता व्यक्ति भी आपकी मीठी बोली सुनकर दोस्ती करने के लिए आतुर रहते हैं। आप व्यवहार कुशल व दिल से सज्जन व्यक्ति तो हैं ही साथ ही दुनिया का शायद ही ऐसा कोई ग़लत काम, बुरी आदत व नशा खुराक बची होगी जो कि आपके सम्पर्क में न आयी हो। ये तारीफ़ तो महाशय अपने मुँह से ही करते है। बस कभी-कभी शराब पीते है। वह सुलेशन नियमित सूँघते है। ये तारीफ़ आपने नहीं बल्कि कष्ट झेल रही आपकी पत्नी ने बताई है। ख़ैर छोड़िये ये हमारा मुद्दा नहीं है। अब इतना तो हमने मान लिया कि आप दिल के बहुत अच्छे इन्सान है। साथ ही आप सिर्फ़ एक गाँव के पिछड़े व्यक्ति नहीं हैं। बल्कि नई जनरेशन को देखते हुए। एक क़दम आगे बढ़े हुए व्यक्ति हैं। आप सभ्य समाज के एक सभ्य नागरिक हैं। और आप बातें भी आज़ादी की, स्वतंत्रता की, तरक्की कर रहे देश में महिलाओं की भूमिका की व महिला पुरुष समानता की करते हैं। अरे यार वो इन्सान ही क्या जो अपनी महिलाओं को चूल्हा, बरतन और बच्चों में ही कै़द करके रखे। अरे दुनिया अब चाँद पर पहुँच गयी। राजनीति, शिक्षा, उद्योग, वाणिज्य, इतिहास, विज्ञान की खोज, समाज की सेवा हर क्षेत्र में महिलाओं की जबर्दस्त दख़ल है। आज तो वो इन्सान पागल ही होगा। जो अपनी पत्नी को चूल्हे, चौके में ही कै़द करके रखता है। मैं अपनी पत्नी को कै़द में नहीं रखता मैं तो मानता हूँ, मैं भी इन्सान हूँ। और वो भी एक इन्सान है। आख़िर उसकी भी अपनी इच्छाएँ हैं उसको पूरा अधिकार है। अपने दोस्त बनाने का, अपने शौक पूरा करने का और खुश रहने का, हम दोनों ही फैक्ट्री में काम करते है। हम दोनों मिलकर फै. सला लेते हैं। घर के सभी काम में हम दोनों की बराबर की हिस्सेदारी होती है। और हम दोनों अपनी ज़िन्दगी से खुश हैं।

हाँ ये बात तो सच है कि विशाल जी की पत्नी 'रेनूका' फैक्ट्री जाती हैं। और ये भी फैक्ट्री जाते हैं। इन्होंने रेनूका जी से (जो इनकी रिश्ते में ही कोई रिश्ता है) प्रेम विवाह किया है। और इनके एक बच्ची भी है। प्रीति जो कि 5 साल की है। रेनू जी के मुँह से इन महाशय की कुछ अलग ही कहानी सुन रखी है।

ये सुलेशन व शराब का सेवन नियमित करते हैं। फैक्ट्री में कारीगर हैं। आठ हज़ार तनख्वाह पाते हैं। बहुत ज़्यादा हुआ तो महीने में पाँच सौ रु. देते हैं। किसी महीने में तो वह भी नहीं बचता। घर तो मेरी तनख्वाह से चलता है। बच्ची परवरिश व भविष्य के लिए इनसे झूठ बोलकर 500 रु. बिटिया के नाम बीमा कर रखी हूँ। एक-एक पल का तो हिसाब माँगते है। किसी से अगर फोन पर भी बतियाओ तो पूरा ब्यौरा देना पड़ता है। कौन है, कौन सहेली आदि। फैक्ट्री में काम करने के बाद घर का सारा काम भी खुद ही करती हूँ। बाबूजी बारहो मास चौबीसों घण्टे नशे में रहते हैं। कभी नशा कम पड़ जाता है। तो जबरन मेरा पैसा भी खर्च कर देते हैं।

आज कितना भी प्रगतिशील विचारों वाला व्यक्ति क्यों न हो वो सामाजिक परिवेश की जड़ता को अकेले नहीं तोड़ सकता और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि औरत वर्ग सिर्फ़ पुरुष वर्ग की खोखली बातों से नहीं आज़ादी के लिए तो महिलाओं को ही एक क़दम आगे बढ़कर दुनिया की जानकारी हासिल करनी होगी। और अपनी मुक्ति के लिए इस समाज से संघर्ष चलाना होगा। और दूसरी बात यह है कि महिला वर्ग के साथ ही पुरुष वर्ग का यह पहला कर्तव्य बनता है कि वो अपनी माँ-बहन, पत्नी या बेटी को शिक्षित करें। उनको बराबरी का दर्जा दे। उनको समाज में गर्व के साथ जीना सिखाये, उनको साहसी बनाये। क्योंकि अगर आप अपने महिला वर्ग के साथ अन्याय, अत्याचार करेंगे तो समाज में आप भी कभी बराबरी का दर्जा नहीं पा सकेंगे क्योंकि समाज के निर्माण का आधार महिलायें ही हैं। एक इंसान को जन्म से लेकर लालन-पालन से लेकर बड़ा होने तक महिलाओं की प्रमुख भूमिका है। अगर महिलायें ही दिमाग़ी रूप से गुलाम रहेंगी तो वो अपने बच्चों की आज़ादी, स्वतन्त्रता व बराबरी का पाठ कहाँ से पढ़ा पायेंगी। दोस्तों आज पूँजीपति भी यही चाहता है कि मज़दूर मेरा गुलाम बनकर रहे। कभी भी हक़-अधिकार, समानता व बराबरी की बात न करे और आज की स्थिति को देखते हुए पूँजीपति वर्ग की खुशी का ठिकाना ही नहीं है।

इसलिए साथियों आज इस कूपमण्डूकता के कवच को उतार फेंकिए समानता व बराबरी की इस लड़ाई में एक क़दम आगे बढ़िये। आपस में न लड़कर अपने असली दुश्मन पूँजीपति वर्ग से लड़ने की तैयारी में अपने आप को मज़दूर वर्ग के रूप में एकजुट करिये।

आनन्द, बादली, दिल्ली

चाहे हरियाणा हो या बंगाल सब जगह मज़दूरों के हालात एक जैसे हैं

मैं कलायत जिले में रहता हूँ जो कि हरियाणा राज्य के कैथल जिला के अन्तर्गत आता है। इस शहर की आबादी 22 हज़ार है। यहाँ पर कोई बड़ा औद्योगिक कारख़ाना मौजूद नहीं है। लेकिन यहाँ पर तक़रीबन 100 लघु उद्योग हैं और 200 के क़रीब दुकानें हैं जिनमे तक़रीबन 800 से 1000 मज़दूर काम करते हैं। इन मज़दूरों की स्थिति बहुत ही दयनीय है। इन मज़दूरों से 12 घण्टों से लेकर 15 घण्टों तक काम कराया जाता है। और पूरे महीने किसी भी प्रकार की छुट्‌टी नहीं मिलती है। किसी भी कारणवश अगर मज़दूर महीने में किसी दिन काम पर न जाए तो उसकी तनख़्वाह काट ली जाती है। हरियाणा सरकार द्वारा तय न्यूनतम मज़दूरी सिर्फ़ किताबों की शोभा बढाती है जबकि असल में मज़दूर मात्र 3000 से 3500 प्रति महीना मिलती है। कहने को तो हमारे संविधान में 250 से ऊपर श्रम क़ानून हैं लेकिन मज़दूरों के लिए इनका कोई मतलब नहीं है। इन मज़दूरों के शारी. रिक हालत तो और भी दयनीय है, 35-40 की आयु में ही 55-60 वर्ष के दिखाई देते हैं। पूँजीवादी मुनाफे की अन्धी हवस ने इनके शरीर से एक एक बूँद खून निचोड़कर सिक्कों में ढाल दिया है। मज़दूर वर्ग को अब समझना होगा कि इस व्यवस्था में इनका कोई भविष्य नहीं है। उसे संगठित होकर इस आदमखोर पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना होगा और एक शोषण विहीन समाज की स्थापना करनी होगी तब जाकर सही मायनों में मज़दूर वर्ग मनुष्य होने पर गर्व महसूस कर सकता है।

– रोहताश, हरियाणा

प्रिय पाटको, मज़दूर बिगुल के जुलाई 2012 अंक से पूर्णांक संख्या ग़लत जा रही थी जिसे इस बार ठीक कर लिया गया है! यह अंक पूर्णांक 22 है और जुलाई 2012 से अप्रैल-मई 2013 के अंक क्रमशः 14 से 21 हैं। इस चूक के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं और पाठकों से अनुरोध करते हैं कि कृपया अपनी फाइल में इसे ठीक कर लें।
– सम्पादक

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782**
- **जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)**
- **114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273009**
- **जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009**
- **जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807**

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही रा. जनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलन कर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित)

मेट्रो के ठेका कर्मचारियों ने प्रदर्शन कर डी.एम.आर.सी. प्रशासन का पुतला फूंका!

नई दिल्ली, 30 मई। दिल्ली मेट्रो रेल कॉरपोरेशन व ठेका कम्पनियों द्वारा श्रम क़ानूनों के गम्भीर उल्लंघन के ख़िलाफ़ दिल्ली मेट्रो रेल कामगार यूनियन के बैनर तले सैंकड़ों मेट्रो कर्मियों ने जन्तर-मन्तर पर प्रदर्शन किया और डी.एम.आर.सी. प्रशासन का पुतला भी फूँका। मेट्रो कर्मियों ने बताया कि मेट्रो प्रशासन और अनुबन्धित ठेका कम्पनियों की मिलीभगत के कारण ही यहाँ श्रम-क़ानूनों का पालन नहीं किया जाता; जिसके चलते मेट्रो कर्मियों के हालात बदतर हो रहे है। ज्ञात हो कि मेट्रो प्रबन्धन अगले महीने की पहली तारीख़ को क़ानूनों को ताक़ पर रखते हुए 250 मेट्रो मज़दूरों को काम से निकाल रहा है। दिल्ली मेट्रो रेल प्रबंधन की इस कार्रवाई का विरोध करते हुए दिल्ली मेट्रो रेल कामगार यूनियन की अगुवाई में मेट्रो मज़दूरों ने डी.एम.आर.सी. प्रशासन का पुतला फूँकने के बाद एक ज्ञापन केन्द्रीय श्रम-मंत्री, क्षेत्रिय श्रमायुक्त व मेट्रो प्रबन्धक मंगू सिंह को सौंपा।

दिल्ली मेट्रो रेल कामगार यूनियन (डीएमआरकेयू) के सचिव अजय ने बताया कि मेट्रो रेल में टोकन देने काम कराने वाली ट्रिग कम्पनी का ठेका 1 जून, 2013 को डी.एम.आर.सी से समाप्त हो रहा है। ऐसे में आर.के. आश्रम से द्वारका मेट्रो स्टेशन तक टोकन देने का काम करने वाले 250 टॉम ऑपरेटर को भी मेट्रो रेल प्रबन्धन काम से निकाल रहा है। जबकि मुख्य नियोक्ता होने के कारण डी.एम.आर.सी को इन मेट्रो कर्मचारियों की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। अजय ने बताया कि दिल्ली मेट्रो रेल में सरकार द्वारा तय न्यूनतम वेतन, ई.एस.आई., पी.एफ. आदि श्रम-क़ानूनों को भी लागू नहीं किया जा रहा है।

मेट्रो प्रबन्धक और अन्य मंत्रियों को सौंपे गये ज्ञापन में रखी गई प्रमुख माँगे है - ठेका कम्पनी ट्रिग द्वारा निकाले गये सभी मज़दूरों को काम पर वापस लिया जाये, ठेका कम्पनी के टेण्डर समाप्त होने पर भी कार्यरत कर्मचारियों को बहाल किया जाये, ठेका क़ानून (नियमितीकरण और उन्मूलन)1970 को लागू कर कर्मचारियों की स्थायी नियमित सुनिश्चित की जाये और सभी श्रम कानून को सख़्ती से लागू किया जाये।

डीएमआरकेयू के सदस्य व मेट्रो रेल में काम रहे नवीन ने कहा कि मेट्रो को दिल्ली की शान कहा जाता है और यह सच भी है कि मेट्रो दिल्लीवासियों के लिए एक सुविधाजनक परिवहन है। लेकिन इस मेट्रो में हाड़-तोड़ मेहनत करने वाले मज़दूरों के लिए स्वयं मेट्रो प्रबन्धन का रवैया असुविधाजनक रहता है।

बिगुल मज़दूर दस्ता की शिवानी ने बताया कि मेट्रो मज़दूर लम्बे समय से डीएमआरसी और ठेका कम्पनियों की मिलीभगत के ख़िलाफ़ संघर्ष चला रहे हैं। उन्होंने बताया कि अब इस संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए क़ानून का सहारा लेते हुए डीएमआरकेयू के सभी मेट्रो मज़दूरों की ओर से एक जनहित याचिका दायर कर रहा है। जिसके तहत स्थाई प्रकृति के काम में ठेका मज़दूरों को रखना क़ानूनन ग़लत होगा। मेट्रो के सफाई कर्मचारी हों, गार्ड, या टॉम आपरेटर हों, सभी के क़ानूनी हक़ों का नंगा उल्लंघन होता है। उन्होंने कहा कि दिल्ली रेल मेट्रो कामगार यूनियन के अन्तर्गत सभी मज़दूर संगठित होकर इस लड़ाई में डीएमआरसी प्रशासन को झुका सकते हैं और आज का यह प्रदर्शन इस लड़ाई का आह्वान है।

इस प्रदर्शन में कई जन संगठन, यूनियन और मज़दूर कार्यकर्ता शामिल थे। प्रदर्शन के दौरान दिशा छात्र संगठन के सनी, नौजवान भारत सभा के योगेश और करावल नगर मज़दूर यूनियन के नवीन ने भी बात रखी।

नोएडा में मज़दूरों का आक्रोश सड़कों पर फूटा

नोएडा का औद्योगिक इलाका गत 20-21 फरवरी को मीडिया में राष्ट्रीय स्तर पर सुर्ख़ियों में था। वजह थी मज़दूरों के आक्रोश का सड़कों पर फूटना। पूँजीवादी ख़बरिया चैनल और अख़बार मज़दूरों को गुण्डा, अपराधी और बल्वाई घोषित कर रहे थे। मगर यही मीडिया मज़दूरों के ऊपर होने वाले रोज़-रोज़ के अन्याय और ज़ोर-ज़ुल्म पर चुप्पी साधे रहता है। देश के अन्य औद्योगिक इलाकों की तरह नोएडा के कम्पनी मालिक श्रम क़ानूनों का खुले आम उल्लंघन करते हैं, यह तो किसी से छुपा नहीं है, मगर अब तो पूरी की पूरी तनख़्वाह भी मार ली जा रही है। नोएडा में ऐसे हज़ारों मज़दूर मिल जायेंगे जिनकी एक-एक दो-दो महीने की तनख़्वाह कोई न कोई बहाना बनाकर मार ली गई है। इनमें से ज़्यादातर मामलों में मालिकों मैनेजरों और तथाकथित ठेकेदारों की मिलीभगत होती है। ऐसी ही एक घटना 20 वर्षीय मज़दूर विकास व उसके साथी मज़दूरों के साथ हुई। विकास के अनुसार वह डी - 125/63, नोएडा में हेल्पर के रूप में काम करता था।

कम्पनी ने कोई बोर्ड नहीं लगाया था। वहाँ ज़्यादातर काम ठेके पर होता था और छोटे-मोटे कई ठेकेदार थे। उसके ठेकेदार के तहत कारीगर और हेल्पर कुल मिलाकर 40 लोग काम करते थे जिसमें औरतें भी शामिल थीं। मेन ठेकेदार का नाम मानदास था जो कभी कभार चार पहिया गाड़ी से आता था। साइट का पूरा काम उसका एक जूनियर पार्टनर मनोज तिवारी देखता था। एक दिन तिवारी आकर बोला कि यहाँ का ठेका टूट गया है और कल से यहाँ कोई काम नहीं होगा और तुम लोग अब कुछ दिन आराम करो। जब नये साइट पर काम मिल जायेगा तो वहाँ काम होगा। बीच-बीच में फोन करते रहना और जब चेक मिल जायेगा तब इस कम्पनी के काम का पैसा ले जाना। चार-पाँच दिन बाद तिवारी आया और उसने बोला कि एक नये साइट पर काम मिल गया है जो डी - 31/63 में है और तुम लोग वहाँ चलो काम करो। पुराने काम का पैसा माँगने पर वह बोला कि अभी वो पैसा नहीं मिला है। सारे मज़दूर मजबूरन वहाँ काम करने चले गये। कुछ दिनों बाद नये कम्पनी के इंचार्ज अनूप और ठेकेदार तिवारी ने कहा कि यहाँ काम ख़त्म हो गया है और तुम लोग 10 मई को आकर हिसाब कर लेना। जब सभी मज़दूर 10 मई को वहाँ पहुँचे तो वह जगह खाली हो चुकी थी। वह बिल्डिंग किराये पर थी। तिवारी कई दिनों तक मज़दूरों को दौड़ाता रहा और एक दिन वह भी गायब हो गया और मोबाइल भी स्विच ऑफ कर दिया। जब मज़दूर मेन ठेकेदार मानदास के पास गये तो वह बोला कि मैं क्या जानूँ, जिसने तुमसे काम करवाया है उसके पास जाओ। उन लोगों ने मान लिया कि दूसरी जगह का पैसा तो डूबा ही समझो, लेकिन पहली वाली जगह डी - 125/63 में तो कम्पनी अभी भी मौजूद है। उन्होंने वहाँ के मालिक से मिलने का फैसला किया। मालिक ने साफ़ कह दिया कि मैं क्या जानूँ तुम लोगों को, मैं तो ठेकेदार को जानता हूँ, उसे बुलाकर लाओ तभी हिसाब होगा।

सभी मज़दूर पार्क में इकट्ठा हुए। वे दुखी और आक्रोश में थे। वे आपस में राय करने लगे कि अब क्या किया जाये। एक मज़दूर ने कहा कि अब कुछ भी करने से कोई फ़ायदा नहीं। 20-25 दिन की तनख़्वाह के चक्कर में 10 दिन तो पहले ही दौड़ चुके हैं, अब ज़्यादा दौडने से भी लग नहीं रहा कि पैसा मिल जायेगा। कोर्ट कचहरी में जायेंगे तो वहाँ समय और पैसा दोनों बर्बाद होगा, यानी नौ की लकड़ी, नब्बे ख़र्च हो जायेंगे। सभी लोगों को उस मज़दूर की बात जँचने लगी। मगर अपना ख़ून जलाकर कमाया पैसा डूबते देखना और वह भी उस समय जब उन्हें पैसे की सख़्त ज़रूरत थी (मकान मालिक किराया और दुकानदार राशन का पैसा माँग रहे थे।) उनके लिए आसान नहीं था। कोई कह रहा था कि मैं तिवारी का सिर फोड़ दूँगा तो कोई कह रहा था कि मैं मानदास को गाड़ी सहित जला दूँगा। कोई कह रहा था कि मैं तिवारी को उसके गाँव से पकड़ कर लाऊँगा और यह सब कहते हुए वे मज़दूर धीरे-धीरे अपने-अपने घर चले गये और अलग-अलग कम्पनियों में बिखर गये।

- प्रमोद, नोएडा

दिल्ली में बादाम मज़दूर एक बार फिर हड़ताल की राह पर!

उत्तर-पूर्वी दिल्ली के करावलनगर इलाक़े में हजारों बादाम मज़दूर अपनी माँगों को लेकर 19 जून से हड़ताल पर हैं। 60 से ज्यादा गोदामों पर मज़दूरों की हड़ताल के बाद से छँटाई नहीं हो रही है। मालिको के गोदाम पर मशीन से टूटा बादाम भरा पड़ा है। हड़ताल में महिला मज़दूरों की अग्रणी भूमिका रही है जिन्होंने मालिको से लेकर पुलिस का डटकर सामना किया है। करावल नगर के मज़दूरों ने खुलकर इलाकाई आधार पर अपने पेशे से अलग पेशे में जुड़े बादाम मज़दूरों का साथ दिया है। करावल नगर मज़दूर यूनियन के नेतृत्व यूनियन में चल रही इस हड़ताल में पेपर प्लेट मज़दूर, वाकर फैक्टरी के मज़दूर, कुकर फैक्टरी के मज़दूर और निर्माण क्षेत्र से जुड़े मज़दूर शामिल हैं। हड़ताल ने पूरे इलाके को मज़दूर और मालिक-पुलिस गठजोड़ के संघर्ष का मंच दिया है। यह हड़ताल बादाम मज़दूरों के संघर्ष की उस कड़ी से जुड़ती है जहाँ से करावल नगर के मज़दूरों ने पहली बार अपनी माँगो को लेकर संगठित हो लड़ना शुरू किया

था। बादाम मज़दूर की 2009 की हड़ताल के बाद ही मज़दूर बादाम मज़दूर यूनियन में संगठित हुए और 2010 में यह इलाकाई यूनियन करावलनगर मज़दूर यूनियन में विकसित हुयी।

आर्थिक मन्दी की लहर से जूझ रहे पूँजीवाद का सारा बोझ मज़दूरों को ही उठाना पड़ता है। महँगाई, छँटनी भुखमरी मज़दूरों के हिस्से में आते हैं। करावलनगर में भी मज़दूरों के रहने के दड़बेनुमा कमरों के किराए, राशन, कपड़े का खर्च लगभग दुगना हो चुका है परन्तु पिछले 3 सालों से बादाम छँटाई और टूटने का रेट मालिकों ने नहीं बढ़ाया है। यह बादाम कैलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया से आयात कर दिल्ली में खारी बावली तक लाया जाता है और फिर निचले स्तर पर करावलनगर में टूटने, छँटाई और पैक होने के बाद बादाम स्थानीय और अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में भेजा जाता है। बादाम के मूल्य में तो पिछले 3 सालों में भारी बढ़ोतरी हुई है और इस क्षेत्र से जुड़े सभी मालिकों ने (भारत से लेकर विदेश तक) करोड़ों-अरबों का कारोबार खड़ा किया है पर बादाम मज़दूर 12-14 घण्टे गोदामों में अमानवीय हालात में काम करने के बाद भी अपने खाने भर के लिए नहीं जुटा पा रहे हैं। कानून के अनुसार इन मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी, रोजगार व मज़दूरी कार्ड आदि मिलना चाहिए, जोकि मज़दूर की पहचान और प्रमाण होता है। लेकिन बादाम तोड़ने के उद्योग में तो अधिकांश ठेकेदार खुद ही ग़ैर-कानूनी तौर पर बिना लाईसेंस के काम करवा रहे हैं, तो मज़दूरों को क्यों मज़दूर होने का प्रमाण देने लगे? नतीजतन, बादाम तोड़ने वाले मज़दूरों के साथ कोई भी अन्याय होता है तो उनके पास कानूनी लड़ाई लड़ने के लिए कोई प्रमाण नहीं होता। वैसे देश में मज़दूरों के लिए 260 से ज्यादा श्रम कानून मौजूद हैं मगर पुलिस, विधायक से लेकर श्रम विभाग तक की जानकारी में मज़दूरों का भंयकर शोषण होता रहता है। सभी इस पर चुप्पी साधे रहते हैं। इसके चलते ही बादाम मज़दूरों ने करावलनगर मज़दूर यूनियन के तहत हड़ताल की शुरुआत की और मालिकों को अपना मागँपत्रक सौंपा।

मज़दूरों की माँगें:

1. बादाम मज़दूरों को बादाम की छँटाई का रेट 3 रुपये प्रति किलो दिया जाये, साथ ही भुगतान हर माह के पहले सप्ताह में किया जाये। बाकी इलाके के सभी मज़दूर को न्यूनतम मज़दूरी दी जाये।

2. हर बादाम मज़दूर को पहचान के तौर पर कानूनन दो चीजें मिलनी चाहिए - पहला, पहचान कार्ड और दूसरा, मज़दूरी कार्ड। यही इस बात का प्रमाण होता है कि वह मज़दूर है और उसने कितनी मज़दूरी की है। साथ ही ठेकेदार को गोदाम में मस्टर रोल रखना होगा जिसमें हाज़िरी, मज़दूरी तथा काम का हिसाब दर्ज होता है।

3. सभी बादाम गोदामों में पीने के साफ पानी, शौचालय और सुरक्षा उपकरण होने चाहिए।

4. सभी बादाम गोदामों का फैक्टरी एक्ट 1948 के तहत पंजीकरण होना चाहिए।

हड़ताल के दौरान बादाम मज़दूर पिछली हड़ताल के बाद से हड़ताल चौक के नाम से प्रचलित जगह पर खूँटा गाड़कर बैठे हैं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे क्रान्तिकारी गीतों और फ़िल्म शो और मज़दूर वर्ग के इतिहास पर वक्तव्य भी आयोजित किये। जिस भी गोदाम पर हड़ताल के दौरान काम जारी था वहाँ महिला मज़दूरों की टोली पहुँचकर काम रुकवा रही हैं। हर हमेशा पुलिस मालिकों के साथ खड़ी है। इस हड़ताल में भी मालिक पुलिस के साथ मिलकर हड़ताल को तोड़ने के भरसक प्रयास कर रही है, कभी मज़दूरों को डरा-धमका और पीटकर तो कभी यूनियन के नेतृत्व को गिरफ्तार करने की कोशिश कर, परन्तु बादाम मज़दूरों ने एकजुट हो हरबार इन्हें कामयाब नहीं होने दिया है। मज़दूरों ने इस लड़ाई को और अधिक व्यापक और राजनीतिक बनाते हुए इलाके के विधायक के घर का घेराव भी किया और अपनी माँगो और इलाके के मज़दूरों की माँगों वाला एक ज्ञापन सौंपने की कोशिश की लेकिन भाजपा विधायक मोहन सिंह बिष्ट पहले सूचना मिलने के बावजूद अपने घर से नदारद थे। इस रिपोर्ट के लिखे जाने तक हड़ताल के पाँचवे दिन मज़दूरों ने अपनी हड़ताल को और मज़बूत बनाने के लिए पूरे इलाके से एक मज़दूर संघर्ष रैली निकाली और करावलनगर के नागरिकों और मज़दूरों से अपनी हड़ताल में समर्थन माँगा।

करावलनगर में बादाम मज़दूरों का संघर्ष: स्त्री मज़दूरों के जुझारूपन की मिसाल

करावलनगर में 19 जून से चल रहा बादाम मज़दूरों का संघर्ष स्त्री मज़दूरों के जुझारूपन का उदाहरण प्रस्तुत करता है। ज्ञात हो कि दिल्ली के इस क्षेत्र में ग़ैरकानूनी बादाम प्रसंस्करण उद्योग चलाये जा रहे हैं। ये उद्योग फैक्ट्री एक्ट 1948 के अंतर्गत पंजीकृत नहीं हैं। यहाँ से प्रसंस्करित बादाम घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों (अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया जैसे देशों) में भेजा जाता है। इन उद्योगों का काम महिला कामगारों के बूते ही चलता है। 19 जून से इन्होंने बादाम छँटाई की दर में वृद्धि के साथ-साथ बेहतर कार्य अवस्थाओं की माँग के लिए अपनी हड़ताल जारी रखी है। इस पूरे संघर्ष को महिला मज़दूरों ने करावलनगर मज़दूर यूनियन के बैनर तले बड़े ही सुनियोजित तरीके और रणनीतिक कुशलता से आगे बढ़ाया है। इस लड़ाई के दौरान इन लोगों ने पुलिस प्रशासन की "सक्रियता" का मुँहतोड़ जवाब देते हुए जीवट और बहादुरी का परिचय दिया है। मालिकों की समन्वय और समझौता नीति की धज्जियाँ उड़ाकर उनकी नींदें हराम कर दी हैं। किसी भी हालत में वे अपनी माँगों से डिगना नहीं चाहतीं और अपने तीखे तेवर के साथ संघर्ष में जुटी हैं। इतिहास बताता है कि विश्व में जहाँ भी बड़ी और जुझारू लड़ाइयाँ लड़ी गयीं सभी में महिला मज़दूरों ने अग्रणी भूमिका निभायी। सर्वहारा वर्ग की विजय अपनी इस आधी आबादी को साथ लिये बिना सम्भव नहीं। करावलनगर की स्त्री मज़दूरों का संघर्ष ज़िंदाबाद!

ग़रीबी रेखा – अल-ज़जीरा में प्रकाशित कार्टून

शोषण का पहिया

मारुति सुजुकी इंडिया लिमिटेड में मज़दूर संघर्ष और अधिकारों का हनन

पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पीयूडीआर) की रिपोर्ट

यह रिपोर्ट 'शोषण का पहिया : मारुति सुजुकी इंडिया लिमिटेड में मज़दूर संघर्ष और अधिकारों का हनन' मारुति के मानेसर यूनिट में 18 जुलाई 2012 को हुई हिंसा की घटना के बाद पीयूडीआर द्वारा की गयी जाँच-पड़ताल पर आधारित है। इस घटना को हुए तकरीबन एक साल बीत चुका है, जिसमें एक एचआर मैनेजर की मौत हो गयी थी और कुछ अन्य मैनेजर और मज़दूर घायल हो गये थे। बाद के महीनों में पुलिस ने इस घटना की काफी गलत तरीके से जाँच-पड़ताल करते हुए बड़ी संख्या में मज़दूरों और उनके परिवारों के सदस्यों को प्रताड़ित किया। इस जाँच के कारण मज़दूरों को गिरफ़्तार करके जेलों में बन्द कर दिया गया और आज तक बहुत से मज़दूरों को जमानत भी नहीं मिली है। पुलिस की जाँच के पूरा होने के पहले ही कम्पनी ने सैकड़ों मज़दूरों पर 18 जुलाई की घटना में शामिल होने का आरोप लगाते हुए उन्हें नौकरी से बर्खास्त कर दिया। पंजीकृत यूनियन को यूनिट के भीतर काम करने की इजाज़त नहीं दी गयी है और यूनिट के बाहर पुलिस और राज्य के अधिकारियों द्वारा लगातार इसकी गतिविधियों को दबाया जा रहा है। इसी पृष्ठभूमि में हम इस घटना से जुड़े तथ्यों की व्यापक जाँच-पड़ताल करने के बाद, घटना और इसके गहरे संदर्भ और प्रभावों के बारे में यह रिपोर्ट जारी कर रहे हैं। इसके पहले पीयूडीआर ने मारुति में मज़दूरों के संघर्ष के बारे में दो अन्य रिपोर्ट भी प्रकाशित की थीं, जिनके शीर्षक थे : 'पूँजी का पहिया' (2001) और 'बेकाबू सरमायादार' (2007)। इन दोनों रिपोर्टों में मारुति संघर्ष के महत्त्वपूर्ण घटनाक्रमों का विश्लेषण दर्ज किया गया है। इस रिपोर्ट पर जाँच के दौरान हम मज़दूरों (ठेका, स्थाई और बर्खास्त), यूनियन के नेताओं और उनके वकील से मिले। हमने गुड़गाँव के श्रम विभाग के अधिकारियों और विभिन्न पुलिस अधिकारियों से भी बातचीत की। अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद हम प्रबन्धन से नहीं मिल पाये।

पीयूडीआर की रिपोर्ट में दर्ज जाँच के नतीजे इस प्रकार हैं :

1. स्वतंत्र जाँच का तमाशा

i. 18 जुलाई 2012 को मारुति के मानेसर यूनिट में हुए घटनाक्रम के बारे में अभी बहुत ज्यादा भ्रम और विरोधाभास की स्थिति है। इस घटना के असल गुनाहगार तभी पकड़े जा सकते हैं, जब एक ऐसी एजंसी से जाँच कराई जाये जो प्रबन्धन से प्रभावित न हो। हरियाणा पुलिस घटना के बाद से ही लगातार प्रबन्धन के पक्ष में काम कर रही है। इसलिए इस काम के लिए उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। इस घटना के स्वतंत्र जाँच न होने के कारण न्याय की पूरी तरह उपेक्षा हुई है।

ii. पीयूडीआर इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि वैज्ञानिक आधार पर जुटाये गये प्रमाणों की बजाय पूर्व-निर्धारित अवधरणाओं के आधार पर जाँच और मुकदमा चलाने का अर्थ यह होगा कि अवनीश देव की हत्या के लिए ज़िम्मेदार लोग आराम से बच जायेंगे और निर्दोष लोगों को सज़ा मिलेगी। पुलिस द्वारा दायर आरोप-पत्र और गिरफ़्तार मज़दूरों की ज़मानत नकारने से यह बात स्पष्ट होती है कि यह मुकदमा इसी दिशा में जा रहा है। यह असल में न्याय के साथ खिलवाड़ होगा और इससे मज़दूरों और अवनीश देव – दोनों को ही न्याय नहीं मिलेगा।

2. मज़दूरों को प्रताड़ित करने में प्रबन्धन, प्रशासन और पुलिस की मिलीभगत

i. क़ानून के शासन की उपेक्षा करते हुए, जाँच के खत्म होने के बहुत पहले ही इस घटना की पूरी ज़िम्मेदारी मज़दूरों पर डाल दी गई। सिर्फ़ प्रबन्धन ने ही घटना के लिए मज़दूरों को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया, बल्कि पुलिस और प्रशासन ने भी यही किया। 18 जुलाई की घटना के बाद पुलिस और प्रबन्धन के गठजोड़ का पूरी तरह से पर्दाफाश हो गया। यह कोई संयोग नहीं हो सकता है कि पुलिस द्वारा 500-600 'अज्ञात आरोपियों' के ख़िलाफ़ प्राथमिकी दर्ज की गयी और कम्पनी द्वारा 546 मज़दूरों को 18 जुलाई की हिंसक घटना के लिए ज़िम्मेदार ठहराते हुए बर्खास्त कर दिया गया। इससे यह पता चलता है कि पुलिस कितने ध्यान से कम्पनी के हितों की सुरक्षा कर रही है।

ii. पुलिस ने पहले से ही यह सोच बना लिया कि दोषी कौन है, और घटना के बाद इसी सोच के आधार पर कार्रवाई की। पुलिस ने मनमाने तरीके से, बगैर किसी जाँच के सैकड़ों मज़दूरों को गिरफ़्तार कर लिया। उसने प्रबन्धन द्वारा दी गयी सूची के आधार पर यह गिरफ़्तारी की। प्रबन्धन ने अपनी सूची में उन मज़दूरों को निशाना बनाया, जो ज़्यादा मुखर थे और यूनियन में सक्रिय थे। गिरफ़्तार मज़दूरों को क्रूर यातना दी गयीं। इसमें हिरासत और गिरफ़्तारी से सम्बन्धित सभी संवैधानिक मानकों का उल्लंघन किया गया और मज़दूरों के परिवार के सदस्यों को प्रताड़ित किया गया। सिर्फ़ इतना ही नहीं हुआ, बल्कि पुलिस लगातार मज़दूरों को धमकी देती रही और बर्खास्त तथा अन्य मज़दूरों के संघर्ष को निशाना बनाती रही है। पुलिस ने अपनी इन कार्रवाइयों द्वारा मज़दूरों के वैध विरोध को खामोश करने और उसे जुर्म में बदलने की कोशिश की है। ऐसा लगता है कि इस मकसद से इतने बड़े पैमाने पर पुलिस ने कार्रवाई की ताकि भविष्य में ये मज़दूर और मानेसर और गुड़गाँव इंडस्ट्रियल एरिया के दूसरे मज़दूर आन्दोलन करने की हिम्मत न जुटा पायें। हाल में, 18 मई 2013 को हरियाणा सरकार ने कैथल में सीआरपीसी की धारा 144 लगा दी और शान्तिपूर्ण तरीके से विरोध कर रहे 150 मज़दूरों को गिरफ़्तार कर लिया। ये मज़दूर पिछले 24 मार्च से शान्तिपूर्ण विरोध कर रहे थे और उनकी यह माँग थी कि गिरफ़्तार मज़दूरों को रिहा किया जाये और बर्खास्त मज़दूरों को फिर से काम पर बहाल किया जाये।

iii. पुलिस की प्रबन्धन के साथ मिलीभगत का एक अन्य उदाहरण यह है कि जाँच-पड़ताल के दौरान इसने प्रबन्धन की लापरवाहियों की तरफ बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया। प्रबन्धन ने कई तथ्यों को नज़रअन्दाज़ किया - जैसे कि 18 जुलाई की हिंसक घटना में मज़दूर भी घायल हुए थे, यूनिट के भीतर बाउंसर मौजूद थे, या फिर यह महत्त्वपूर्ण तथ्य, कि मज़दूर हमेशा ही अवनीश देव को अपना हमदर्द मानते थे। असल में, मज़दूर ही घटना की स्वतंत्र जाँच की माँग करते रहे हैं और राज्य तथा केन्द्र सरकार ने इस माँग की उपेक्षा की है।

3. मारुति में अनुचित श्रम व्यवहारों और मज़दूरों के संघर्ष का इतिहास

i. इस घटना को इसके पहले हुई घटनाओं की लम्बी श्रृंखला के सन्दर्भ में देखने की आवश्यकता है। मानेसर यूनिट के भीतर प्रबन्धन और मज़दूरों के बीच लगातार तनाव और टकराव की स्थिति रही है। मज़दूर अपनी यूनियन पंजीकृत कराने और काम की अमानवीय स्थितियों पर ध्यान दिलाने की भी लगातार संघर्ष करते रहे हैं।

ii. सितम्बर 2011 को मानेसर यूनिट में मारुति प्रबन्धन ने यह शर्त रखी कि 'अच्छे आचरण' के एक शपथ पत्र (अंडरटेकिंग) पर हस्ताक्षर करने के बाद ही मज़दूर प्लांट में काम करने के लिए आ सकते हैं। इस अंडरटेकिंग ने मज़दूरों के क़ानूनी हड़ताल करने का अधिकार छीन लिया। इंडस्ट्रियल डिस्प्युट एक्ट (25टी, 25यू, पाँचवी अनुसूची से जोड़कर पढ़ने पर) से उन्हें इस अधिकार की गारंटी मिली है। इसका अर्थ यह भी है कि इंडस्ट्रियल डिस्प्युट ऐक्ट की पाँचवी अनुसूची के सेक्शन 8 के मुताबिक मज़दूरों के साथ गलत बरताव हो रहा है। (देखें अध्याय 3)।

iii. अन्य कॉरपोरेटों की तरह ही मारुति ने भी उत्पादन लागत को घटाने और मुनाफ़े को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने तथा दूसरी कम्पनियों से होड़ करने पर ज्यादा जोर दिया है। पर यह ध्यान में रखना ज़रूरी है कि लगभग अन्य सभी ऑटोमोबाइल कम्पनियों की तुलना में मारुति अपने मज़दूरों पर सबसे कम खर्च करती है। इसके अलावा, अपने मज़दूरों से ज्यादा-से-ज्यादा काम लेने के लिए कम्पनी ने कई तरीके भी ईजाद किये हैं। इसलिए मारुति में इसकी क्षमता से बहुत ज्यादा उत्पादन सामर्थ्य (प्रोडक्शन कैपेबिलिटी) और लक्ष्य तय किये जाते हैं। कम्पनी की उत्पादन सामर्थ्य 15.5 लाख यूनिट प्रति वर्ष है, जबकि इसमें 12.6 लाख यूनिट प्रति वर्ष उत्पादन करने का सामर्थ्य ही है (एनुअल रिपोर्ट, मारुति सुजुकी इंडिया लिमिटेड, 2011-12)। यहाँ मज़दूरों को रोबोट की तरह साढ़े आठ घण्टे काम करना पड़ता है। उन्हें खाना खाने के लिए 30 मिनट का अवकाश मिलता है और चाय पीने के लिए दो बार 7-7 मिनट का अवकाश मिलता है। पिछले कई वर्षों से मज़दूरों को अपना शिफ्ट शुरू होने के 15 मिनट पहले रिपोर्ट करना होता है और उन्हें हर रोज अपना शिफ्ट खत्म होने के 15 मिनट बाद भी काम करना होता है। इस काम के लिए उन्हें कोई अतिरिक्त पैसा नहीं मिलता है। इसके अलावा, यहाँ छुट्टी लेने का नियम भी काफ़ी सख़्त है और इसका पूरा रेकार्ड वेतन से जुड़ा हुआ है। छुट्टी लेने पर मज़दूरों के वेतन में कटौती होती है। इससे मारुति का काम लगातार चलता रहता है, लेकिन इससे मारुति के मज़दूरों पर दबाव बहुत ज्यादा बढ़ गया है।

iv. छुट्टी लेने के कारण वेतन में होने वाली कटौती मारुति मज़दूरों के वेतन के इंसेंटिव से जुड़े भाग से की जाती है, जो 'प्रोडक्शन-परफार्मेंस-रिवार्ड स्कीम' से जुड़ा हुआ है। एक स्थायी मज़दूर द्वारा, अपने सुपरवाइज़र की इजाज़त से ली जाने वाली एकमात्र छुट्टी से भी उसे 1200 रुपये से 1500 रुपये तक का नुकसान हो सकता है। 18 जुलाई 2012 की घटना से पहले और उसके बाद भी वेतन का एक हिस्सा फ़िक्स रहा है और इंसेंटिव वेतन के रूप में दिया जाने वाला एक प्रमुख घटक उत्पादन, मुनाफ़ा और छुट्टी के रेकार्ड से जुड़ा होता है, जिससे मज़दूरों को हर महीने एक जैसी तनख्वाह नहीं मिलती, बल्कि उसमें अन्तर होता है। इंसेंटिव से जुड़े वेतन के मानक मनमाने तरीके से तय किये गये और मारुति के मानेसर प्लांट के प्रबन्धन ने इसमें मनमाने तरीके से बदलाव भी किया है (देखें अध्याय 2 और 3)।

v. मारुति प्रबन्धन, ख़ास तौर पर मानेसर प्लांट के प्रबन्धन ने नियमित काम के लिए भी अस्थायी और ठेका मज़दूरों के उपयोग को एक नियम जैसा बना लिया है। श्रम विभाग के आँकड़ों के अनुसार जुलाई 2012 में मानेसर में 25 प्रतिशत से भी कम मज़दूर स्थायी थे। इन मज़दूरों को सिर्फ़ उसी दिन के लिए पैसा दिया जाता है, जिस दिन वे काम करते हैं (अर्थात् हर महीने 26 दिन) और उन्हें स्थायी मज़दूरों जितना काम करने के बावजूद उनसे कम पैसा दिया जाता है। इससे सिर्फ़ कम्पनी के खर्च में ही कटौती नहीं होती है, बल्कि इस नीति से कम्पनी प्रबन्धन को ऐसे मज़दूर मिल जाते हैं जो प्रबन्धन के सामने बहुत कमज़ोर, असुरक्षित और बेआवाज़ होते हैं। इस बात की बहुत कम सम्भावना होती है कि वे मुखर होकर अपने अधिकारों की माँग करेंगे। 18 जुलाई की घटना के बाद कम्पनी ने यह घोषणा की कि वह अपने मज़दूरों का नियमितीकरण (रेगुलराइज़ेशन) करेगी। लेकिन अभी यह घोषणा लागू नहीं हुई है (देखें अध्याय 2)।

vi. मारुति प्रबन्धन ने मज़दूरों को संगठित होने से भी रोकने की पुरज़ोर कोशिश की है और इस तरह उसने उनके अधिकारों का उल्लंघन किया है। मारुति प्रबन्धन द्वारा मज़दूरों को अपना यूनियन बनाने की इजाज़त न देना इंडियन ट्रेड यूनियन ऐक्ट (1926) का उल्लंघन है। 2011 के मध्य से मज़दूरों का संघर्ष बहुत ज्यादा बढ़ जाने से सक्रिय मज़दूरों को अपना निशाना बनाया है। उसने उन्हें निलंबित

(पेज 6 पर जारी)

जेल रूपी कारख़ानों में काम करते चीन के मज़दूर

चीन में मुनाफ़े की भेंट चढ़े 118 मज़दूर

अमानवीय एवं शोषणकारी पूँजीवादी व्यवस्था के मुनाफे की हवस के चलते 25 मई को चीन के जिलिन प्रांत के देहई के मुर्गी बूचड़खाने में एक दर्दनाक घटना के दौरान आग लगने तथा अमोनिया गैस के रिसाव से 118 से अधिक मज़दूरों ने जान गवाँ दी। इस बूचड़खाने का मालिक चीन की एक बड़ी चिकन उत्पादक कम्पनी बाओयुआनफेंग के पास था, जिसमें तीन सौ से अधिक मज़दूर काम करते थे। बूचड़खाने में श्रम कानूनों सिर्फ़ काग़ज़ों पर दर्ज़ थे। हद तो यह कि दुघर्टना के समय कारखानों के सभी दरवाजे भी बन्द थे जिस कारण मज़दूरों के पास निकलने का कोई रास्ता नहीं था। जिस बूचड़खाने में ये दुर्घटना हुई वह भी मज़दूरों की काम की परिस्थिति और भवन की हालात ज़र्ज़र थी जहाँ आग लगने की स्थिति में मज़दूरों को बचाने के लिए न तो सुरक्षा उपकरण थे न ही भवन से निकलने के लिए रास्ता था। साफ़ है कि सुरक्षा उपकरण की अनदेखी का कारण कम से कम मज़दूरी लागत पर अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाना है।

वैसे भी चीन में मज़दूरों के साथ हुई ये कोई अकेली दर्दनाक घटना नहीं है इससे पहले भी लगातार मज़दूर मुनाफे की बलि चढ़ते रहे हैं अगर हम पिछले बीस साल बड़ी औद्योगिक दुर्घटनाओं पर नज़र डालें तो 2008 में कोयला खदान में विस्फोट होने से 281 मज़दूरों की जान गई थी, 2000 में लुओयांग में एक चार मंजिला शॉ. पिंग सेंटर में आग लगने से 309 लोग मारे गए थे, वहीं 1993 में दक्षिण चीन के खिलौना कारख़ानों के 87 मज़दूरों की मौत हुई। इन दुघर्टना को या कहें हत्या के लिए निजी उद्योग. पतियों की आपसी होड़ ज़िम्मेदार है वैसे भी दक्षिण चीन के समुद्र तट पर बसे ज़्यादातर कारख़ानों में स्पेशल एक्सपोर्टिंग जोन (सेज) के अन्तर्गत आते हैं जहाँ उत्पादन का मुख्य उद्देश्य निर्यात होता है। वही इन सेज के औद्योगिक क्षेत्र में श्रम कानून काफ़ी ढीले ढाले होते है और जो होते भी है वो सिर्फ़ काग़ज़ों पर ही शोभा देते हैं दूसरा चीन में गाँव देहात से करोड़ों बेरोजगार नौजवान इन औद्योगिक क्षेत्र में बेहद कम मज़दूरी में 10–12 घण्टे खटने को मज़बूर हैं इसी कारण आज चीन के तटीय शहरों में अमेरिका, जापान, दक्षिण कोरिया और ताइवान की ढेर सारी कम्पनियों का जाल बिछ चुका है साफ़ तौर पर ''बाज़ार समाजवाद'' में विकास की जो तस्वीर दुनिया में पेश की जाती है उसके पीछे करोड़ों मज़दूरों का नारकीय जीवन जीना है। और चीन विकास की मीनारों के नीचे हर साल केवल खदान दुर्घटनाओं में 5000 से अधिक मज़दूर मारे जाते हैं। वैसे आज नामधारी ''कम्युनिस्ट'' चीन के मज़दूरों के हालात भी विश्व भर के मज़दूरों से अलग नहीं। अभी हाल में बांगलादेश, पाकिस्तान से लेकर भारत तक में सैकड़ों मज़दूर जेलरूपी कारख़ानों में मौत के मुँह में समाये हुए हैं। अकेले भारत में सरक. ारी आँकड़े बताते हैं कि हर साल दो लाख मज़दूर औद्योगिक दुर्घटनाओं का शिकार होते हैं। वैसे भी माओ की मृत्यु (1976) के बाद से चीन में क़ाबिज़ कम्युनिस्ट पार्टी के शासक मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि नये पैदा हुये पूँजीपति वर्ग की चाकरी में लगे हुए हैं। तभी आज चीन में मज़दूरों के काम परिस्थितियों और सुरक्षा उपकरण के मानक की खुलेआम अनदेखी की जा रही। ऐसे में ये बात समझने के लिए जरूरी है कि आज चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के चोलों के पीछे खुली पूँजीवादी नीतियाँ लागू हो रही हैं जिसके कारण आज चीन के बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी का जीवन स्तर जो माओकालीन चीन में बेहतर था। लेकिन विगत 37 वर्ष मे बदतर हालात में पहुँच गया।

– गजेन्द्र, दिल्ली

रिपोर्ट : शोषण का पहिया

(पेज 5 से आगे)

करने, बर्ख़ास्त करने और उनके ख़िलाफ़ झूठे मुकदमे दायर करने की रणनीति अपनायी है। एक बार यूनियन के रजिस्टर हो जाने के बाद इसके सदस्यों और समन्वयकों को भी इसी तरह की या इससे भी बुरी प्रताड़ना का सामना करना पड़ा। यूनियन के सभी नेताओं और इसके सक्रिय सदस्यों को 18 जुलाई की घटना में फँसा दिया गया है इससे यूनियन पूरी तरह से ठप्प पड़ गयी है। इससे मज़दूरों की स्थिति काफ़ी कमज़ोर हो गयी है और उनके पास प्रबन्धन से समझौता–वार्ता करने का कोई रास्ता नहीं बचा है। बाद में, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, कम्पनी ने बहुत से सक्रिय मज़दूरों को नौकरी से निकाल दिया क्योंकि कम्पनी इन्हें 18 जुलाई की घटना के लिए ज़िम्मेदार मानती है। यूनिट से यूनियन को ज़बर्दस्ती निकालने के बाद कम्पनी अब मज़दूरों के मुद्दों पर ध्यान देने का दिखावा कर रही है। इसके लिए इसने एक 'शिकायत समिति' (ग्रिवांस कमिटी) का गठन किया है और मज़दूरों को इसका भाग बनने के लिए मजबूर किया है। क़ानूनी रूप से पंजीकृत यूनियन (एम.एस.डब्लू.यू.) को, जिसके सदस्य लगातार मज़दूरों के मुद्दों को उठा रहे हैं, यूनिट के भीतर काम करने की इजाज़त नहीं दी गयी है।

vii. मज़दूरों को यूनियन बनाने के अधिकार से वंचित रखने के लिए हरियाणा के श्रम विभाग ने प्रबन्धन के साथ मिलीभगत करके काम किया

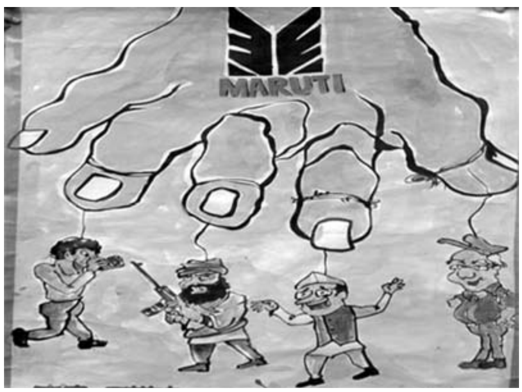

है। अगस्त 2011 में इसने मज़दूरों के रजिस्ट्रेशन के आवेदन को तकनीकी आधारों का हवाला देकर लटका कर रखा। देखा जाये तो, मज़दूरों द्वारा 3 जून 2011 को पंजीकरण के लिए दिए गये आवेदन पत्र के बाद उनको लगातार संघर्ष करना पड़ा और इसके बाद 1 मार्च 2012 को यूनियन का पंजीकरण हुआ। इसके अलावा, ऐसा लगता है कि श्रम विभाग ने कभी भी मारुति के श्रम सम्बन्धी विवादों में मज़दूरों की मदद के लिए हस्तक्षेप नहीं किया। जब 2011 की तालाबन्दी को हड़ताल घोषित करते हुए प्रबन्धन ने मज़दूरों के वेतन में कटौती करने की घोषणा की थी, या फिर जब प्रबन्धन ने मज़दूरों के माँग–पत्र पर कार्रवाई नहीं की तो श्रम विभाग ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इसने प्रबन्धन के दोहरे और गलत श्रम व्यवहारों पर या स्थायी कामों के लिए ठेका मज़दूरों के उपयोग पर सवाल खड़े नहीं किये (देखें अध्याय तीन)।

मारुति के मानेसर यूनिट में मज़दूरों द्वारा हाल में किये संघर्ष की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि इसमें स्थायी और ठेका मज़दूरों के बीच अभूतपूर्व एकता रही है। संघर्ष की शुरूआत से ही ठेका मज़दूरों का नियमितीकरण एक प्रमुख मुद्दा रहा है। एम.एस.डब्लू.यू. के बैनर तले फिर से संगठित हुए संघर्ष में शामिल मज़दूरों में स्थायी और ठेका मज़दूर दोनों ही हैं। 18 जुलाई की घटना के लिए दोषी ठहराये गये और जेल में बन्द मज़दूरों में ठेका मज़दूर भी शामिल हैं।

मारुति कम्पनी या इसकी कार मारुति की कहानी को असाधारण नहीं बनाती है। असल में, प्रबन्धन और पुलिस के क्रूर दमन और हर स्तर पर श्रम विभाग तथा न्यायपालिका द्वारा इन्हें राहत देने में नाकामी के बावजूद मज़दूरों का असाधारण संघर्ष इसे एक असाधारण कहानी बनाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि मज़दूरों ने अपनी यूनियन बनाने के राजनीतिक अधिकार के लिए लगातार लड़ाई लड़ी है। उन्होंने अपने संघर्ष में यूनियन के भीतर लोकतांत्रिक संरचनाएँ बनाने पर भी ध्यान दिया है और इन संरचनाओं के माध्यम से इस अत्यन्त शोषणकारी श्रम व्यवस्था के ख़िलाफ़ अपनी शिकायतें अभिव्यक्त करने का तरीका खोजा है।

पीयूडीआर यह माँग करता है कि :

i. उस घटना की एक निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायिक जाँच की जाये जिसके परिणामस्वरूप अवनीश देव की जान गयी। जाँच के लिए दोनों पक्षों की सहमति से जज की नियुक्ति हो।

ii. 18 जुलाई की घटना के सम्बन्ध में हरियाणा की पुलिस द्वारा की गयी तहकीकात को न मान कर, फिर से तहकीकात के लिए एसआईटी नियुक्त की जाये, जिसमें राज्य के बाहर की पुलिस रखी जाये।

iii. 18 जुलाई की घटना में वहाँ उपस्थित बाउंसरों की भूमिका की जाँच की जाये और उनके नामों की सूची उजागर की जाये।

iv. गिरफ़्तारियों, हिरासत में यातनाएँ देने और अभियुक्तों के परिवारों को परेशान करने के सम्बन्ध में क़ानूनी दिशानिर्देशों के उल्लंघन के लिए ज़िम्मेदार हरियाणा पुलिसकर्मियों की पहचान की जाये और उनके ख़िलाफ़ आपराधिक कार्रवाई की जाये।

v. घटना के बाद, घटना में शामिल होने के ठोस सबूतों के न होने पर भी काम से निकाले गये सभी मज़दूरों को काम पर वापस लिया जाये।

vi. श्रम विभाग की भूमिका की जाँच हो और उन अधिकारियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की जाये जिन्होंने श्रम क़ानूनों से सम्बन्धित अपनी ज़िम्मेदारियाँ पूरी नहीं की हैं।

vii. 18 जुलाई की घटना के सम्बन्ध में गिरफ़्तार सभी मज़दूरों को तुरन्त ज़मानत दी जाये। घटना की जाँच जल्दी पूरी की जाये और उसके लिए ज़िम्मेदार लोगों को न छोड़ा जाये।

viii. अपनी स्वतंत्र यूनियन बनाने के मज़दूरों के अधिकार को मारुति में पुनःस्थापित किया जाये। एम.एस.डब्लू.यू. को, जो कि मानेसर यूनिट की क़ानूनी रूप से मान्यता प्राप्त यूनियन है, फैक्टरी के अन्दर काम करने दिया जाये।

xi. मारुति की गुड़गाँव और मानेसर यूनिटों में काम कर रहे सभी ठेका मज़दूरों को नियमित किया जाये और नियमित काम के लिए ठेके पर मज़दूर रखे जाने की ग़ैरक़ानूनी प्रथा पर रोक लगायी जाये।

x. क़ानून में निहित मज़दूरों के अधिकारों को मारुति में तुरन्त सुनिश्चित किया जाये।

– डी. मंजीत, आशीष गुप्ता
सचिव, पीयूडीआर

हरियाणा सरकार खुलकर सुज़ुकी के एजेण्ट की भूमिका में

पिछले 10 महीने से मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन अपने न्याय और ज़ायज़ माँगों के लिए संघर्ष कर रही है लेकिन लोकतंत्र का लबादा ओढ़े सरकार से लेकर पूँजीवादी न्याय प्रणाली खुलकर पूँजीपतियों की तरफ़दारी में लगी हुई है। कैथल शहर में 24 मार्च से लगातार 56 दिन डी.सी. कार्यालय पर बैठे मारुति मज़दूरों के जारी अनिश्चितकालीन धरने पर हरियाणा सरकार और पुलिस की बर्बर कार्रवाई ने उनके असली चरित्र को उजागर कर दिया। ज्ञात हो कि मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने 19 मई को मज़दूर की महापंयाचत का आह्वान किया था जिसे रोकने के लिया प्रशासन ने बिना किसी सूचना के कैथल में धारा 144 लगी थी और 18 मई की रात कई पुलिस वैन ने डी.सी. कार्यालय के परिसर में धरना स्थल पर 96 मज़दूरों को पकड़ लिया और धरने पर जुटाया गया राशन-पानी भी जब्त कर लिया। अगले दिन भी पुलिस ने कैथल शहर को पूरा पुलिस छावनी में बदल दिया बस अड्डा, हनुमान वाटिका से लेकर डी.सी. कार्यालय पर पुलिस ने बैरिकड खड़े कर दिये ताकि किसी भी क़ीमत पर मारुति मज़दूरो के जुटान को रोका जा सके। परन्तु मज़दूरों ने हरियाणा सरकार की चाल नाक़ाम करते 19 मई को प्यौद गाँव में जुटने की योजना बनाई जहाँ मज़दूरों के परिवार जन समेत किसानों और मज़दूरों संगठन ने भी हिस्सेदारी की। फिर क़रीब 1 बजे एक हज़ार लोगों ने 3 किलोमीटर लम्बा मार्च निकलते हुए उद्योगमंत्री रणदीप सुजरेवाला के निवास का घेराव के लिए आगे बढ़े। लेकिन पुलिस ने 500 मीटर दूर ही बैरिकेड लगाकर प्रदर्शनकारियों को रोक दिया। शाम पाँच बजे तक प्रशासन मज़दूरों को टालते रहा। और किसी भी माँग पर झुकने को तैयार न हुआ तो इसके बाद मारुति मज़दूरों ने शान्तिपूर्ण तरीक़े से गिरफ़्तार देने के लिए आगे बढ़ने का फ़ैसला किया जिस पर पुलिस ने पानी की बौछार (वाटर कैनन) और मज़दूरों के परिजनों जिनमें अधिकतर बुर्जुग और महिलायें शामिल थीं, भूखे भेड़िये की तरह लाठियाँ भाँजी। साफ़ है कि 18 व 19 मई को ''शान्ति भंग'' करने के नाम पर जो धारा 144 लागू की गई थी वे सिर्फ़ मारुति मज़दूरों के लिए ही थी क्योंकि 19 मई को खुद रणदीप सुरजेवाला हज़ारों लोगों के साथ ब्राह्मण सभा में पशुराम जंयती मना रहा था वही हजका पार्टी के कुलदीप बिशनोई भी कैथल अनाज मंडी में विकास रैली की सभा कर रहा था। कुल मिलाकर पुलिस ने 18 और 19 मई को 111 लोगों को गिरफ़्तार किया जिनमें 100 लोगों पर धारा 144 तोड़ने के अपराध में आ. ईपीसी 188 और दूसरी धारा लगाई तथा प्रदर्शनकारी 11 लोगों पर कई संगीन व आपराधिक और ग़ैर जमानती धाराओं (जिनमें 307 से लेकर आर्मस एक्ट) के तहत मुक़दमे दर्ज़ किये गये हैं। इन 11 लोगों में एमएसडब्ल्यू के राम निवास समेत खाप पंचायती, ट्रेड यूनियन नेता तथा सामाजिक कार्यकर्ता भी शामिल हैं जिनको न्यायालय ने 14 दिन की न्यायिक हिरासत में भेज दिया है।

मारुति मज़दूरों के दमन ने हरियाणा सरकार की मंशा साफ़ कर देती है वे खुली तानाशाही के साथ मारुति सुज़ुकी के एजेण्ट का काम करेगी। फिलहाल अभी भी मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन कैथल में विरोध-प्रदर्शन जारी रखकर हरियाणा सरकार पर दबाव बनाने के लिए जन-समर्थन जुटा रही है। लेकिन 1 जून और 11 जून के विरोध प्रदर्शन के बाद हरियाणा सरकार मज़दूरों की किसी भी माँग पर झुकने के लिए तैयार नहीं है।

वहीं देश भर में मारुति मज़दूरों के दमन के विरोध में तमाम जन संगठन, ट्रेड यूनियन प्रदर्शन कर मज़दूरों से अपनी एकजुटता दिखा रहे है जिसकी कड़ी में 19 मई को हरियाणा भवन, 20 मई को जन्तर-मन्तर पर और 24 मई श्रम शक्ति भवन पर मज़दूर संगठनों ने हरियाणा सकरार के बर्बर दमन का विरोध किया। तथा दिल्ली में मारुति मज़दूर संघर्ष एकजुटता मंच का गठन कर दिल्ली एनसीआर के मज़दूरों के बीच मारुति मज़दूरों के आन्दोलन में समर्थन का आह्वान किया गया।

नरेन्द्र मोदी का उभार और मज़दूर वर्ग के लिए उसके मायने

(पेज 1 से आगे)

कम्पनियों का चहेता वह इसलिए बन गया है क्योंकि राज्य में जनता के हर विरोध को कुचलकर उनकी लूट की राह के रोड़ों को हटाने में उसने देश के दूसरे सभी शासकों को फिलहाल पीछे छोड़ दिया है। अनगिनत सरकारी और ग़ैर-सरकारी सर्वेक्षणों में गुजरात के "विकास" के दावों की हवा निकल चुकी है। वहाँ भूख और कुपोषण के आँकड़े भयावह हैं, ग़रीबों और मेहनतकशों का जीना मुहाल है और दंगों में उजड़े लाखों अल्पसंख्यक आज भी कैम्पों में रह रहे हैं। मगर पूँजीपतियों और खाते-पीते मध्यवर्ग के एक बड़े हिस्से को इनसे कोई मतलब नहीं। उन्हें इस बात से कोई लेना-देना नहीं कि गुजरात की समृद्धि की बुनियाद में मज़दूरों का बर्बर शोषण है।

आज पूरी दुनिया में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था संकट से घिरी हुई है और उससे निकलने का कोई उपाय नज़र नहीं आ रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था की गाड़ी भी संकट के दलदल में बुरी तरह फँस चुकी है। हमेशा की तरह शासक वर्ग संकट का बोझ जनता पर डालने में लगे हैं जिससे बेतहाशा महँगाई, बेरोज़गारी और कल्याणकारी मदों में कटौती लाज़िमी है। संकट बढ़ने के समय हमेशा ही भ्रष्टाचार भी सारी हदें पार करने लगता है, जैसा कि आज हो रहा है। ऐसे ही समय में, पूँजीपति वर्ग को हिटलर और मुसोलिनी जैसे "कठोर" नेताओं की ज़रूरत पड़ती है जो हर किस्म के विरोध को रौंदकर उसकी राह आसान बना दे। आज भारत का बुर्जुआ वर्ग भी नरेन्द्र मोदी पर इसीलिए दाँव लगाने को तैयार नज़र आ रहा है। हालाँकि यह भी सच है कि आज भी उसकी सबसे विश्वसनीय पार्टी कांग्रेस ही है। भारतीय बुर्जुआ वर्ग बड़ी चालाकी से फासीवाद को ज़ंजीर से बँधे शिकारी कुत्ते की तरह इस्तेमाल करता रहा है जिसका भय दिखाकर जनता के आक्रोश को काबू में रखा जा सके, लेकिन काम पूरा होने पर उसे वापस खींच लिया जा सके।

'द हिन्दू' से साभार

आज पूरा कारपोरेट मीडिया नरेन्द्र मोदी की छवि बनाने में जुटा हुआ है। दरअसल फासीवादी और तमाम तरह की साम्प्रदायिक ताक़तें झूठ के प्रचार पर ही अपना ढाँचा खड़ा करती हैं। ये ताक़तें आज हिन्दुत्व की बात करते हुए करोड़ों हिन्दुओं, या गुजरातियों या मराठियों की बात भले ही करती हैं लेकिन उनका असली काम होता है कि लोगों का ध्यान उनकी वास्तविक समस्याओं से हटाकर उन्हें आपस में लड़वा दिया जाये। हिटलर, मुसोलिनी से लेकर नरेन्द्र मोदी, राज ठाकरे, बाल ठाकरे और ओवैसी जैसे कट्टरपंथी मुस्लिम नेताओं तक का यही काम है। धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा आदि की पहचान की राजनीति के सहारे पिछड़ेपन और अवसरों की कमी का ज़िम्मेदार अल्पसंख्यकों और प्रवासियों को ठहरा दिया जाता है। जबकि इसका कारण है मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था। यही कारण है कि फासीवादियों की मुख्य भर्ती अधिकतर भय और आर्थिक असुरक्षा के शिकार निम्न मध्य वर्ग से ही होती है। मोदी हिन्दुत्व के तहत गुजरात में होने वाले विकास पर फूले नहीं समाते किन्तु गुजरात में 31 प्रतिशत लोग ग़रीबी रेखा से नीचे जी रहे हैं, लगभग 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। अस्पतालों में 1 लाख आबादी पर महज़ 58 बिस्तर उपलब्ध हैं। इन सबका कारण यही है कि सरकार जनता के करों से जमा पैसे को पूँजीपतियों पर लुटा रही है। अभी हाल ही में महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट ने गुजरात की सरकार पर यह सवाल उठाया है कि वह ज़मीन, बिजली, पानी आदि पूँजीपतियों को जिस दर पर देती है, उससे सार्वजनिक खज़ाने का नुकसान होता है; ऊपर से मोदी सरकार करों आदि में पूँजीपतियों को छूट देने में सबसे आगे है। मज़दूरों पर पूरे गुजरात में जो आतंक राज कायम है, उससे पूँजीपतियों को सारे नियम-कानून ताक पर रखकर बेहिचक मुनाफ़ा कमाने का पूरा अवसर भी मिलता है। हाल ही में, हीरा कारीगरों के आन्दोलन को मोदी सरकार ने जिस "दृढ़ता" से कुचला, उसी के तो सारे पूँजीपति दीवाने हैं! आम मेहनतकश जनता के शोषण का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले कुछ सालों में सबसे अधिक मज़दूरों के आन्दोलन भी गुजरात में ही हुए हैं।

हिटलर के प्रचार मन्त्री गोयबल्स ने एक बार कहा था कि यदि किसी झूठ को सौ बार दोहराओ तो वह सच बन जाता है। यही सारी दुनिया के फासिस्टों के प्रचार का मूलमंत्र है। आज मोदी की इस बात के लिए बड़ी तारीफ़ की जाती है कि वह मीडिया का कुशल इस्तेमाल करने में बहुत माहिर है। लेकिन यह तो तमाम फ़ासिस्टों की ख़ूबी होती है। मोदी को "विकास पुरुष" के बतौर पेश करने में लगे मीडिया को कभी यह नहीं दिखायी पड़ता कि कच्छ की खाड़ी में नमक की दलदलों में काम करने वाले मज़दूरों की क्या हालत है जिनको मौत के बाद नमक में ही दफ़न कर दिया जाता है क्योंकि उनका शरीर जलाने लायक नहीं रह जाता। अलंग के जहाज़ तोड़ने वाले मज़दूरों से सूरत के कपड़ा मज़दूरों तक लोहे के बूटों तले जी रहे हैं। आज आर्थिक और राजनीतिक संकट से तंग आयी जनता के सामने कारपोरेट मीडिया देश की सभी समस्याओं के समाधान के तौर पर 'सशक्त और निर्णायक' नेता के रूप में मोदी को पेश कर रहा है। यह अलग बात है कि मोदी जिन आर्थिक नीतियों और श्रम नीतियों को गुजरात में लागू कर रहा है, इस देश में उसकी शुरुआत 1991 में वित्त मन्त्री के तौर पर मनमोहन सिंह ने ही की थी।

मेहनतकशों को ऐसे झूठे प्रचारों से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। उन्हें यह समझ लेना होगा कि तेज़ विकास की राह पर देश को सरपट दौड़ाने के तमाम दावों का मतलब होता है मज़दूरों की लूट-खसोट में और बढ़ोत्तरी। ऐसे "विकास" के रथ के पहिए हमेशा ही मेहनतकशों और ग़रीबों के ख़ून से लथपथ होते हैं। लेकिन इतिहास इस बात का भी गवाह है कि हर फासिस्ट तानाशाह को धूल में मिलाने का काम भी मज़दूर वर्ग की लौह मुट्ठी ने ही किया है!

– अरविन्द

साहसपूर्ण संघर्ष और क़ुर्बानियों के बावजूद

(पेज 1 से आगे)

और प्रदर्शन हुआ; 1 जनवरी को गुड़गाँव में डी.सी. कार्यालय पर प्रदर्शन हुआ; 20–27 जनवरी तक न्याय अधिकार यात्रा निकालते हुए, रोहतक में हरियाणा के मुख्यमन्त्री भूपेन्द्र हुड्डा के गृहनगर में प्रदर्शन किया गया; 5 फरवरी को पूरे देश में अलग–अलग संगठनों ने मारुति सुजुकी के संघर्षरत मज़दूरों के समर्थन में प्रदर्शन किये; और उसके बाद कैथल से लेकर रोहतक तक अलग–अलग मन्त्रियों और अधिकारियों से मुलाक़ात का सिलसिला चलता रहा। इसके बाद अन्ततः, मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन के नेतृत्व ने उस राय पर अमल किया जो कि ‘बिगुल मज़दूर दस्ता’ उन्हें लम्बे समय से देता रहा था: यानी एक जगह खूँटा गाड़कर बैठने का फैसला किया गया जिसके लिए यह तय हुआ कि 20 मार्च को मारुति मज़दूर गुडगाँव में स्थायी धरने के लिए केन्द्रीय ट्रेड यूनियन पर दबाव बनायें। लेकिन प्रशासन और दलाल ट्रेड यूनियन की मिलीभगत से मजदूरों को स्थायी धरने की अनुमति नहीं मिली। इसके बाद यूनियन ने कैथल में अनिश्चितकालीन धरने की योजना बनायी, जो कि हरियाणा के उद्योग मन्त्री रणदीप सुरजेवाला का निर्वाचन क्षेत्र है। 24 मार्च से कैथल में चार साथियों की अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल के साथ धरने की शुरुआत हुई; जब सुरजेवाला ने हुड्डा से बातचीत करायी और हुड्डा ने श्रमायुक्त से बात करके कोई समाधान निकालने का आश्वासन दिया तो भूख हड़ताल समाप्त हुई लेकिन धरना जारी रहा। धरने के जारी रहने के बावजूद हरियाणा सरकार ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। पहले तो धरने को उजाड़कर एक जगह से दूसरी जगह स्थानान्तरित करवा दिया गया और उसके बाद भी प्रत्यक्ष और परोक्ष माध्यमों से संघर्षरत मज़दूरों को प्रताड़ित करने का सिलसिला चलता रहा। 50 से भी ज़्यादा दिन बीत गये, लेकिन हरियाणा सरकार के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। इस बीच यूनियन के नेतृत्व ने गिरफ़्तार और बर्ख़ास्त मज़दूरों के गाँवों की खाप पंचायतों से समर्थन जुटाने की शुरुआत की। बीच में, एक–दो बार धरना स्थल पर ही खाप पंचायतों के कुछ प्रतिनिधियों के साथ कार्यक्रम आयोजित किये गये। जाट आरक्षण को लेकर संघर्ष करने वाले खाप के नेता सुरेश कौथ भी कुछ समय के लिए संघर्ष का समर्थन करने लगे। जब 56 दिन बीत गये तो 19 मई को सुरजेवाला के निवास स्थान की ओर रैली का आह्वान किया गया। मज़दूरों का नेतृत्व भी अब इस बात को समझ रहा था कि धरने पर बैठे रहने से हरियाणा सरकार को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ रहा है। लेकिन 18 मई की रात को ही पुलिस ने धरना स्थल पर धावा बोलकर वहाँ से क़रीब 96 मज़दूरों को और कुछ संगठन के प्रतिनिधियों को गिरफ़्तार कर लिया। इसके बावजूद, खापों से फिलहाल मिल रही मदद और गाँवों से मज़दूरों के परिवार वालों की संख्या के बूते 19 मई की रैली के कार्यक्रम को क़ायम रखा गया। पहले मज़दूर प्यौदा गाँव में जुटे और फिर वहाँ से वाहनों में लदकर सुरजेवाला के घर के पास पहुँचे और फिर वहाँ से मज़दूरों ने एक रैली की शक्ल में सुरजेवाला के निवास की ओर बढ़ने की शुरुआत की। रैली का नेतृत्व यूनियन ने सुरेश कौथ के हाथों में सौंप दिया था। कुछ देर बाद ही पुलिस ने मज़दूरों पर बर्बरतापूर्ण लाठी चार्ज शुरू कर दिया और भीड़ को तितर–बितर कर दिया। इस बीच, कुछ मज़दूर नेताओं और कुछ संगठनों के प्रतिनिधियों को भी पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। इस घटना के बाद यूनियन की प्रोविज़नल कमेटी के अधिकांश साथी जेलों में थे, और जो बचे थे वे बिखरे हुए मज़दूरों को समेटने में लगे हुए थे। मज़दूर पूरी ताक़त के साथ लड़ने के लिए अभी भी तैयार थे। 1 जून को मज़दूरों ने डी.सी. कार्यालय पर धरने की इजाज़त के लिए प्रदर्शन किया। इसके बाद, 11 जून को न्याय अधिकार सम्मेलन किया गया, जिसके बाद डी.सी. कार्यालय तक एक जुलूस निकाला गया। एक प्रतिनिधि मण्डल डी.सी. कार्यालय में गया जहाँ डी.सी. से इजाज़त माँगने की मुलाक़ात के लिए 17 जून का समय दिया गया। इस बीच यूनियन नेतृत्व ने खापों और खापों ने यूनियन नेतृत्व का साथ छोड़ दिया है और यूनियन नेतृत्व एक बार फिर सीटू के भरोसे किसी समझौते तक पहुँचने के प्रयासों में लग गया है। जब तक संघर्ष का केन्द्र गुड़गाँव–मानेसर था, तब भी समझौता करवाने के लिए यूनियन नेतृत्व केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की समिति पर ज़्यादा निर्भर था। बीच में कुछ समय के लिए यह निर्भरता खापों पर ज़्यादा हो गयी थी, लेकिन अब गेंद घूम–फिर कर फिर से सीटू के पाले में आ गयी है!

अब तक का पूरा घटनाक्रम संक्षेप में यह है। यह बात कड़वी लग सकती है, लेकिन हरेक संघर्षरत मज़दूर इस बात को समझ रहा है कि आन्दोलन आगे नहीं जा रहा है, बल्कि गम्भीर रूप से ठहरावग्रस्त है। मज़दूरों के अन्दर भी इस बात का अहसास है कि एक गिरावट आन्दोलन में मौजूद है। निश्चित तौर पर, यह गिरावट आन्दोलन के लम्बा चलने की वजह से उतनी नहीं है, जितना कि आन्दोलन के आगे न बढ़ पाने के कारण है। अब फिर से 17 तारीख को कैथल में डी.सी. से धरने की इजाज़त के लिए मिलने की तिथि मिली है। इसके बाद भी यह तय नहीं है कि डी.सी. इजाज़त देगा या नहीं। और अगर वह देगा भी तो कैथल में ही धरना करने का नतीजा तो हम पहले ही देख चुके हैं। हर किसी के दिमाग़ में यह सवाल है कि दुबारा वही काम करने से क्या हासिल होगा? लेकिन फिर भी अभी यूनियन के नेतृत्व ने कुछ अन्य संगठनों के सुझाव पर यही फैसला लिया है। सीटू भी यही चाहता है कि संघर्ष का केन्द्र फिलहाल कैथल ही बना रहे, क्योंकि एक तो कैथल में सीटू से सम्बद्ध ट्रेड यूनियनों की कुछ ताक़त है और आगे वे इसका फायदा उठा सकते हैं, और दूसरा इसलिए कि माकपा के एक निगम पार्षद प्रेमचन्द भी इस आन्दोलन के दौरान गिरफ़्तार हुए हैं और अगर संघर्ष का केन्द्र कैथल ही बना रहता है तो इसका चुनावी फायदा मिलने की सम्भावना माकपा को दिख रही है।

मज़दूरों के परिवारों की स्त्रियों पर पर लाठी बरसाती हरियाणा की “बहादुर” पुलिस

नतीजतन, संघर्ष अभी कैथल में ही होगा, हालाँकि कैथल में संघर्ष की योजना पहले आजमायी जा चुकी है और नाकामयाब हो चुकी है।

आज मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन एक बेहद नाज़ुक मोड़ पर खड़ा है। इस मौक़े पर हम अभी तक की घटनाओं का एक विश्लेषण और समीक्षा सभी साथियों के सामने रखना ज़रूरी समझते हैं; साथ ही, इस मौक़े पर हम अपने कुछ सुझाव भी रखना चाहते हैं। जाहिर है, कि यदि आन्दोलन अपने तय लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ रहा होता, तो अभी हमें समीक्षा–समाहार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती; यह काम बाद में भी किया जा सकता था। लेकिन सच्चाई यह है कि आन्दोलन अभी एक संकट का शिकार है और इस संकट से बाहर निकलने के लिए इसके कारणों की समीक्षा की आज बेहद ज़रूरत है। हम इन्हीं कारणों की समीक्षा सबसे पहले आपके सामने रखेंगे और उसके बाद इस संकट से निपटने के रास्तों के बारे में अपने विनम्र सुझाव आपके सामने रखेंगे।

मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन के ठहरावग्रस्त होने के पीछे मौजूद कमियाँ–कमज़ोरियाँ

आन्दोलन के ठहरावग्रस्त होने के कारणों को हम आपके सामने बिन्दुवार रखेंगे जिससे कि पूरी बात स्पष्ट रूप में सामने आ सके।

1) सही रणनीति और सही रणकौशल की कमी:

7–8 नवम्बर को मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के संघर्ष में जो नया चरण शुरू हुआ, उस समय से ही आन्दोलन का नेतृत्व या तो सही रणनीति और रणकौशल को नहीं अपना सका या फिर उसने सही रणनीति को अपनाने में देर की। जब 7–8 नवम्बर को सामूहिक भूख हड़ताल से आन्दोलन फिर से शुरू हुआ तब से ही अगर गुड़गाँव–मानेसर–धारूहेड़ा–बावल की पूरी औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों को एक सामान्य माँगपत्रक बनाकर मारुति सुज़ुकी में शुरू हुए आन्दोलन से जोड़ने की पुरज़ोर कोशिश की जाती तो आन्दोलन मज़बूत होकर आगे बढ़ सकता था। उस समय ‘आगे का रास्ता क्या हो?’ नामक पर्चे में बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से यह राय रखी भी गयी कि मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के संघर्ष ने जो मुद्दे उठाये हैं, वह केवल मारुति सुज़ुकी के कारखाने के मुद्दे नहीं हैं, बल्कि समूचे ऑटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूरों के मुद्दे हैं और इसलिए हमें सभी ऑटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूरों का आह्वान करना चाहिए और उन्हें साथ लेने का प्रयास करना चाहिए। हो सकता है कि शुरू में ज़्यादा मज़दूर साथ न आयें, लेकिन अगर कुछ मज़दूरों को भी हम साथ ले सकते हैं, तो यह भविष्य में कई रास्तों को खोलेगा। लेकिन उस समय हम इस रणनीति को नहीं अपना सके और हमारा मुद्दा मारुति सुज़ुकी कम्पनी की चौहद्दी में ही क़ैद रहा। अगर हम अन्य मज़दूरों को साथ लेने का प्रयास करते भी थे, तो एटक, सीटू, एच.एम.एस. आदि जैसी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के नेतृत्व के ज़रिये। 2011 में हुए आन्दोलन के दौरान ही काफ़ी हद तक इन ट्रेड यूनियनों का चरित्र सामने आ चुका था और उन पर भरोसा करने का कोई अर्थ नहीं था। हमारे हरेक प्रदर्शन में इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने अपने नेताओं को समर्थन देने के लिए भेज दिया। लेकिन एक बार भी वे अपनी ताक़त लेकर हमारे समर्थन में नहीं आये। हर वर्ष फरवरी में ये ट्रेड यूनियनें दो दिन की रस्म अदायगी करने वाली सामान्य हड़ताल करती हैं और उस समय ये अपनी ताक़त का प्रदर्शन करने के लिए जन्तर–मन्तर पर इकट्ठा होते हैं। लेकिन जब मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का वास्तविक मुद्दा और आन्दोलन सामने था, तो इन्होंने कभी भी अपनी ताक़त को हमारे समर्थन में नहीं उतारा। न तो इन्होंने किसी एक दिन टूल डाउन किया, न एक दिन की भी प्रतीकात्मक हड़ताल की। ऐसे में, हमारा यह सुझाव था कि इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के नेतृत्व के ज़रिये नहीं बल्कि हमें सीधे अन्य ऑटोमोबाइल मज़दूरों के बीच जाना चाहिए, उन्हें अपने आन्दोलन से जोड़ना चाहिए, उन्हें साथ लेने के लिए मारुति मज़दूरों और अन्य संगठनों के कार्यकर्ताओं की मिश्रित टीम बनायी जानी चाहिए जो कि पूरे ऑटोमोबाइल पट्टी में पर्चों के साथ प्रचार करे। बाद में, इस योजना को अपनाने को लेकर राय बनी भी। उस समय हमारा कहना था कि हमें दिल्ली में जन्तर–मन्तर पर या फिर रामलीला मैदान पर अपना विशाल प्रदर्शन करना चाहिए, जिसमें कि हमें गिरफ़्तार और बर्ख़ास्त मज़दूरों के परिवार वालों को भी बुलाना चाहिए। लेकिन कुछ संगठनों का इस बात पर ज़ोर था कि हमें प्रदर्शन न करके सम्मेलन करना चाहिए। हमारा कहना था कि जब आन्दोलन पहले से ही सड़कों पर है तो उसे सम्मेलन में ले जाने का क्या अर्थ है? 9 दिसम्बर को दिल्ली में कार्यक्रम करने की तिथि तय हुई। इस बात को लेकर आखिरी समय तक फैसला नहीं हो पा रहा था कि केवल ऑटोमोबाइल मज़दूर सम्मेलन किया जाय, या सम्मेलन का समापन एक रैली के साथ किया

(पेज 9 पर जारी)

क्यों ठहरावग्रस्त है मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन?

(पेज 8 से आगे)

जाय। अन्तिम समय तक कुछ संगठन इस बात के लिए प्रोविज़नल कमेटी को राज़ी कर रहे थे कि रैली न निकाली जाये। यहाँ तक कि किसी एक सन्दिग्ध व्यक्ति की ओर से दिल्ली पुलिस को यह अण्डरटेकिंग भी लिखकर दे दी गयी कि हम रैली नहीं निकालेंगे! सभी मज़दूरों का यह मानना था कि केवल सम्मेलन करके अगर हम दिल्ली से लौट जायेंगे तो उसका कोई फायदा नहीं होगा। कई मज़दूरों को जब यह बताया गया कि रैली नहीं निकाली जायेगी, और केवल सम्मेलन किया जायेगा तो वे 9 दिसम्बर को दिल्ली आये ही नहीं। लेकिन हमारा अन्त तक यह प्रयास था कि रैली निकले, क्योंकि अगर रैली नहीं निकलती तो दिल्ली आना व्यर्थ होता। अन्त में, पुलिस को किसी तरह रैली के लिए राज़ी किया गया और जन्तर-मन्तर तक रैली निकाली गयी। इस रैली की वजह से मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के संघर्ष के बारे में दिल्ली में तमाम लोगों को पता चला। जन्तर-मन्तर पर जाने का कार्यक्रम पहले से तय न होने के कारण न्यूज़ चैनलों और अख़बारों को नहीं बुलाया जा सका। फिर भी, कुछ मीडियाकर्मी जो जन्तर-मन्तर पर मौजूद थे उन्होंने रैली की ख़बर बनायी। लेकिन फिर भी अन्तिम समय तक रैली को लेकर जो अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई थी, उसके कारण काफ़ी नुकसान हुआ। अगर पहले से ही रैली का आह्वान किया गया होता, तो मज़दूर कहीं ज़्यादा संख्या में आये होते। लेकिन 9 दिसम्बर को अन्य ऑटोमोबाइल मज़दूर तो दूर, मारुति सुज़ुकी के संघर्षरत मज़दूर भी बेहद कम संख्या में पहुँचे, जिसका मुख्य कारण यही था कि केवल सम्मेलन करने की योजना को लेकर कोई उत्साह नहीं था। दिल्ली के स्थानीय मज़दूर संगठनों द्वारा लायी गयी संख्या शक्ति के कारण उस दिन सम्मेलन और रैली में शामिल लोगों की संख्या मुश्किल से सम्मानजनक स्थिति में पहुँची। यह पूरा प्रकरण दिखलाता है कि सही रणनीति को अपनाने में और सही वक़्त पर अपनाने में एक गम्भीर भूल हुई।

इस रैली के दौरान ही बिगुल मज़दूर दस्ता समेत कुछेक अन्य संगठनों के वक्ताओं ने यह राय ज़ाहिर की कि मारुति सुज़ुकी का मुद्दा कोई गुड़गाँव या महज़ हरियाणा का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह एक राष्ट्रीय मुद्दा है। इसलिए आन्दोलन के केन्द्र को गुड़गाँव से राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में लाया जाये। लेकिन कुछ संगठन लगातार प्रोविज़नल कमेटी को इस बात पर सहमत करते रहे कि संघर्ष को दिल्ली न ले जाया जाय। हालाँकि, 9 दिसम्बर को हुई एक दिन की रैली के बाद ही दीपेन्द्र हुड्डा ने यूनियन के प्रतिनिधियों को बात करने के लिए बुला लिया था। इसी से साफ़ ज़ाहिर था कि आन्दोलन को दिल्ली की सड़कों पर लाने से हरियाणा सरकार पर भी काफ़ी दबाव बन सकता है। इसका एक कारण यह भी था कि दिल्ली में भी कांग्रेस की सरकार है और 2013 में दिल्ली विधानसभा के चुनाव होने वाले हैं। इसके बाद एक दिन का एक अन्य प्रदर्शन जन्तर-मन्तर पर रखा गया। हमारा कहना था कि अब एक-एक दिन के प्रदर्शनों का दौर बीत चुका है और यूनियन नेतृत्व को किसी एक जगह खूँटा गाड़कर बैठना चाहिए। एक-एक दिन के प्रदर्शनों और मन्त्रियों और अफसरों से वार्ताओं से सरकार पर हमारी माँगों को मानने का कोई दबाव नहीं पड़ रहा है। हमारा यह भी सुझाव था कि एक जगह डेरा डालकर संघर्ष शुरू करने के लिए सबसे सही जगह दिल्ली है। अगर मारुति सुज़ुकी जैसी विशाल ऑटोमोबाइल कम्पनी के सैकड़ों मज़दूर अपनी-अपनी वर्दियों में और अपने परिवारों समेत दिल्ली में किसी एक जगह बैठ जायेंगे तो इससे कई फायदे होंगे। पहला फायदा यह होगा कि मीडिया हमारे आन्दोलन को कवरेज देगा जिससे कि मज़दूरों का पक्ष देश की जनता के बीच जायेगा और सरकार और कम्पनी दोनों पर ही हमसे वार्ता करने का दबाव निर्मित होगा। दूसरा कारण यह था कि दिल्ली में तमाम क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन अपना समर्थन हमें देते और आन्दोलन व्यापक बनता। तीसरा कारण था कि ऐसी सूरत में तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें भी हमें वास्तविक समर्थन देने को मजबूर हो जातीं, न कि दिखावटी समर्थन। अन्य कई कारण थे जिनसे कि हमें दिसम्बर या जनवरी में ही दिल्ली में खूँटा गाड़कर अपना धरना शुरू करने के फ़ायदे मिलते और अब तक शायद हमारी कम-से-कम कुछ माँगों पर हम सरकार और कम्पनी को समझौते के लिए बाध्य कर सकते थे। लेकिन अपने आपको क्रान्तिकारी और इंक़लाबी बताने वाले कुछ संगठन इस प्रस्ताव का विरोध करते रहे। इसका सबसे अहम कारण यह था कि इन संगठनों की दिल्ली में ताक़त नहीं है। अगर आन्दोलन का केन्द्र दिल्ली में स्थानान्तरित होता तो इन्हें भय था कि आन्दोलन में इनकी पहुँच-पकड़ कमज़ोर पड़ सकती है, और दिल्ली में जो मज़दूर संगठन अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में हैं उनकी पकड़ मज़बूत हो सकती है। लिहाज़ा, अपने संकीर्ण सांगठनिक लाभ के कारण ये आन्दोलन में यह राय बनाते रहे कि दिल्ली नहीं जाना चाहिए और दिल्ली जाने से कोई लाभ नहीं होगा। अफ़सोस की बात यह रही कि आन्दोलन का नेतृत्व भी इस बात को समझ नहीं सका और आन्दोलन के केन्द्र को दिल्ली लाने का फैसला नहीं कर सका। जब एक-एक दिन के प्रदर्शनों से कुछ भी हासिल नहीं हो सका, और जब केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों का चरित्र भी आन्दोलन के नेतृत्वकारी साथियों के सामने साफ़ हो गया, तो अन्ततः उन्होंने इस राय पर अमल करने का फैसला किया कि अब एक जगह बैठकर प्रदर्शन करना चाहिए। हालाँकि, सीटू समेत तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें इसका विरोध कर रही थीं, लेकिन फिर भी यूनियन नेतृत्व ने स्वतन्त्र विवेक का परिचय देते हुए एक जगह बैठने का फैसला किया। लेकिन इसके लिए दिल्ली जाने की बजाय कैथल जाने का रास्ता अख़्तियार किया गया।

हमने तभी आगाह किया था कि कैथल में धरने से कुछ हासिल हो पायेगा इसकी उम्मीद कम है। हुड्डा सरकार और उसके पहले चौटाला सरकार ने दिखला दिया था कि हरियाणा में वे किसी भी मज़दूर या किसान आन्दोलन का स्वागत लाठियों और जेलों से करेंगे। ऐसा नहीं है कि हरियाणा में हुड्डा सरकार को आन्दोलन के बूते झुकाया नहीं जा सकता। लेकिन कोई ऐसा आन्दोलन ही उसे झुका सकता है जो 10-15 हज़ार लोगों को सड़कों पर उतार सकता हो। मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के पूरे आन्दोलन में सबसे अच्छी स्थिति में हम 4-5 हज़ार लोगों का जुटान कर पाये और गिरावट की हालत में अब 500 लोगों को भी सड़कों पर उतार पाना मुश्किल हो गया है। हमने मार्च में ही अपनी राय नेतृत्व के ज़िम्मेदार साथियों तक पहुँचायी थी कि जब तक आप लोग शान्तिपूर्ण धरने पर एक जगह बैठे रहेंगे, तब तक हरियाणा सरकार आपको हाथ भी नहीं लगायेगी, लेकिन आप जैसे ही आन्दोलन को जुझारू रूप देते हुए रैली या घेराव की तरफ़ आगे बढ़ेंगे, वैसे ही हुड्डा सरकार दमन का रास्ता अपनायेगी। सवाल दमन से बचने का नहीं था, बल्कि इस बात का था कि क्या हमारी इतनी ताक़त है कि हम हरियाणा में दमन झेलकर भी अपने आन्दोलन को आगे बढ़ा सकें? हमारा मानना था कि हमारी अभी इतनी ताक़त नहीं है। कुछ लोगों को लगता था कि खापों से सहायता लेकर हुड्डा सरकार को झुकाया जा सकता है। हमने तब भी स्पष्ट किया था कि ऐसा नहीं होने वाला है। खापों की अपनी राजनीति होती है और अपने समीकरणों के मुताबिक वे तब तक ही आन्दोलन का साथ देंगे जब तक उनका कोई लाभ हो, और उन्हें कोई जोखिम न हो। 19 मई को हुए लाठी चार्ज के बाद के घटनाक्रम ने हमारी बात को सही सिद्ध कर दिया है।

जब कृष्ण और जरासन्ध का आमना-सामना हुआ और कृष्ण ने पाया कि अभी उनके पास इतनी ताक़त नहीं है कि वे जरासन्ध की सेना को हरा सकें, तो उन्होंने अपनी राजधानी ही मथुरा से द्वारका स्थानान्तरित कर दी और जरासन्ध से निपटने के लिए सही शक्ति और सही समय की प्रतीक्षा करने लगे। एक आन्दोलन में इसी प्रकार की रणनीति बनाने का कौशल होना चाहिए। लेकिन मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन में नेतृत्व इस बात को नहीं समझ सका। आप किसी भी संघर्ष को दो तरीक़े से जीत सकते हैं। अगर आपके पास पर्याप्त ताक़त है तो आप अपनी ताक़त के बूते अपने शत्रु को पराजित कर सकते हैं। यदि फिलहाल आपके पास पर्याप्त ताक़त नहीं है तो आप सही रणनीति, रणकौशल और दाँव-पेच के बूते अपने शत्रु को हरा सकते हैं। इसी वजह से मार्च में ही धरना और भूख हड़ताल की जगह के तौर पर दिल्ली को चुना जाना चाहिए था। वहाँ पर मीडिया कवरेज और राजधानी में होने के कारण हम अपने मुद्दे को राष्ट्रीय मुद्दा बना सकते थे। लेकिन यह मौक़ा हम चूक गये। अन्ततः 19 मई को वही हुआ जिसका अन्देशा था। नयी गिरफ़्तारियाँ हुईं। कई संगठनों के लोग भी जेल गये। यूनियन के नेतृत्व का बड़ा हिस्सा अब जेल में है। नतीजा यह हुआ कि अब हमारे आन्दोलन में वे शुरुआती मुद्दे तो पीछे चले गये हैं, जो हमने उठाये थे, और अब मुख्य तौर पर हमारा आन्दोलन 'बन्दी मुक्ति आन्दोलन' बन गया है। लेकिन अभी भी हमें लगता है कि कैथल में जमे रहकर हमें कुछ हासिल हो सकता है, तो यही कहा जा सकता है कि सही रणनीति और रणकौशल अपनाने के सवाल पर हम अभी भी चेते नहीं हैं। कुछ लोग यह भी सोच रहे हैं कि कैथल से निकलकर गुड़गाँव की ओर रुख़ किया जाय। हमें लगता है कि यह तो और भी आत्मघाती होगा। और हम गुड़गाँव से ही तो कैथल आये थे! अब तो जो सबसे तार्किक क़दम बचता है वह है दिल्ली में डेरा डालना। लेकिन निहित हितों के चलते सीटू और साथ ही अपने आपको इंक़लाबी और क्रान्तिकारी बताने वाले कुछ संगठन इस प्रस्ताव का पूरी ताक़त से विरोध कर रहे हैं। यह एक भारी राजनीतिक भूल है जिसकी क़ीमत आने वाले समय में हम चुकायेंगे। मारुति का मुद्दा पहले से ही एक राष्ट्रीय चरित्र वाला मुद्दा है और हम उसे बेवजह एक स्थायीय या प्रादेशिक मुद्दा बनाकर अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। आने वाला समय इस बात को सिद्ध कर देगा।

मारुति के मज़दूरों पर बर्बर दमन के ख़िलाफ़ मज़दूर संगठनों का धरना

2) संघर्ष का "कॉण्ट्रैक्ट" किसी अन्य को देने की प्रवृत्ति

सही रणनीति और सही रणकौशल न अपना पाने का सबसे अहम कारण है हमारे आन्दोलन के नेतृत्व में किसी न किसी ताक़त के पीछे चलने, उसे अपने आन्दोलन की बागडोर थमा देने और अपनी ताक़त और विवेक पर भरोसा न करने की प्रवृत्ति का मौजूद होना। जब तक आन्दोलन का केन्द्र गुड़गाँव था, तब तक आन्दोलन का नेतृत्व केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की 16-सदस्यीय समिति की इच्छा के विपरीत कोई कदम नहीं उठा पाता था। काफ़ी हद तक आन्दोलन की कार्रवाइयों का फैसला उनकी इच्छा से होता था। वास्तव में, एक जगह खूँटा गाड़कर बैठने का फैसला लेने में आन्दोलन के नेतृत्व को देर इसी वजह से हुई क्योंकि सीटू समेत तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें इसका विरोध कर रही थीं। मज़दूरों की बहुत पहले से यह राय बनने लगी थी कि अब एक जगह बैठा जाये। लेकिन आन्दोलन का नेतृत्व केन्द्रीय ट्रेड

(पेज 10 पर जारी)

साहसपूर्ण संघर्ष और क़ुर्बानियों के बावजूद क्यों ठहरावग्रस्त है मारुति का आन्दोलन?

(पेज 9 से आगे)

यूनियनों का समर्थन खोने का जोखिम नहीं उठाना चाहता था। हमने तब भी कहा था कि इस समर्थन से हमें मिल ही क्या रहा है? अगर सीटू और एटक चाहें तो गुड़गाँव-मानेसर क्षेत्र में अपनी ताक़त के बूते सरकार को हमारी माँगों की सुनवाई करने के लिए मज़बूर कर सकते हैं। लेकिन उन्हें ऐसा करना ही नहीं था! और उन्होंने किया भी नहीं! लेकिन इस बात को समझने में आन्दोलन के नेतृत्व को काफ़ी देर हो गयी। मार्च में जाकर आन्दोलन का नेतृत्व केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की इच्छा के विरुद्ध एक जगह बैठने और धरना और भूख हड़ताल का निर्णय ले पाया। और वह भी कैथल में! इस देर के कारण भी काफ़ी नुकसान हुआ। इसके बाद जब गुड़गाँव से आन्दोलन का केन्द्र स्थानान्तरित होकर कैथल पहुँचा तो वहाँ नेतृत्व की निर्भरता खापों पर बन गयी। अब आन्दोलन की कार. 'वाइयों का निर्धारण मुख्य रूप से खाप के नेताओं के हाथ में था। यहाँ भी एक राजनीतिक भूल हुई। खापों की राजनीति का पूरा चरित्र समझने में कमी रही। ऐसा समर्थन किसी भी रूप में दृढ़ और स्थायी नहीं हो सकता था। और 19 मई की घटना के बाद ही यह बात स्पष्ट भी हो गयी है। अब जब खापों की रहनुमाई में भी बात किसी मुकाम तक नहीं पहुँची तो फिर नेतृत्व वापस पुराने रहनुमा, यानी सीटू, की रहनुमाई में पहुँच गया है। स्पष्ट है कि हम अतीत के अनुभवों से सीख नहीं रहे हैं। किसी न किसी रहनुमा की तलाश करने की प्रवृत्ति के पीछे जो मुख्य कारण है, वह है अपनी ताक़त पर पूरी तरह से भरोसा नहीं करना। इस प्रवृत्ति के कारण ही आन्दोलन कभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों तो कभी खापों के पीछे चलने लगता है। दूसरे शब्दों में कहें तो आन्दोलन को चलाने का कॉण्ट्रैक्ट किसी अन्य के हाथों में सौंपा जाता रहा। इस कारण से अधिकांश मौक़ों पर सही वक़्त पर सही फ़ैसले नहीं लिये जा सके।

3) मारुति सुज़ुकी के मुद्दे के राष्ट्रीय चरित्र को नहीं समझ पाना:

यह एक बड़ी राजनीतिक भूल थी कि नेतृत्व इस बात को नहीं समझ पाया कि मारुति सुज़ुकी का मसला हरियाणा का मसला नहीं है। मारुति सुज़ुकी इस देश की सबसे बड़ी कार कम्पनी है। इसके कारखाने देश के कई हिस्सों में है। जल्दी ही एक संयंत्र गुजरात में भी खुलने वाला है। इसके ग्राहकों का आधार पूरे देश में है। इसी वजह से आन्दोलन के केन्द्र को बहुत पहले ही दिल्ली में स्थानान्तरित कर दिया जाना चाहिए था। इसके दो कारण हम पहले ही बता चुके हैं: पहला, हमारी ताक़त का सीमित होना जिसके चलते रणनीतिक और रणकौशलात्मक तौर पर कम ताक़त में सरकार और कम्पनी पर अपनी माँगों की सुनवाई का दबाव बनाने के लिए दिल्ली सही जगह थी; दूसरा, दिल्ली में मीडिया के ज़रिये और शहर के नागरिकों के नाम मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों की ओर से अपील का पर्चा बाँटकर एक 'मीडिया ट्रायल' की स्थिति पैदा की जा सकती थी। मीडिया में एक धड़ा मारुति सुज़ुकी का समर्थक है, तो एक ह्युण्डई-समर्थक लॉबी भी है। दूसरी लॉबी हमारे प्रदर्शन को दिल्ली में कवरेज अवश्य देती और इसके कारण पहली लॉबी के लिए भी हमारे प्रदर्शन का 'ब्लैक आउट' करना सम्भव नहीं होता। प्रिण्ट मीडिया में भी यही स्थिति होती। ऐसे में, हरियाणा सरकार, केन्द्र सरकार और कांग्रेस पर दबाव बढ़ता और जल्द से जल्द कोई समझौते का फार्मूला निकल सकता था। इन दो कारणों के अलावा तीसरा कारण यह है कि मारुति सुज़ुकी का मसला चरित्र से ही एक राष्ट्रीय मसला है, बशर्ते कि हम इसे स्थानीय या प्रान्तीय चरित्र देने की नादानी न करें। लेकिन अफसोस की बात यह है कि इस आन्दोलन में लगातार ही यह नादानी की जाती रही है और अभी भी इस ग़लती को हम दूर नहीं कर सके हैं। गुड़गाँव, रोहतक या कैथल में हमने जो कुछ भी किया, उसकी कुछ कवरेज अखबारों के स्थानीय संस्करणों में आयी; किसी भी राष्ट्रीय समाचार चैनल या अखबार ने कुछेक बिरले मौक़ों को छोड़कर इन जगहों पर हमारे प्रदर्शनों, रैलियों या धरनों को कवरेज नहीं दी। यहाँ तक कि 19 मई को कैथल में हुए बर्बर लाठी चार्ज तक की ख़बर एक कम वितरित होने वाले राष्ट्रीय अखबार के अलावा किसी भी राष्ट्रीय अखबार या चैनल पर नहीं आयी। ऐसे में, हम यह उम्मीद कैसे कर सकते हैं कि रोहतक, कैथल या गुड़गाँव में संघर्ष से हरियाणा सरकार पर कोई दबाव बन सकेगा?

4) ट्रेड यूनियन जनवाद और निर्णय लेने की प्रक्रिया में पारदर्शिता का अभाव:

यह एक अहम कारण है जिसके कारण जनवादी और पारदर्शी तरीके से आन्दोलन के अहम फैसले नहीं लिये जा सके। निस्सन्देह मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने मजदूरों के बीच जिलावार संयोजक (डिस्ट्रिक्ट कोऑर्डिनेटर) टीम बना रखी थी लेकिन इस जिलावार संयोजक टीम का मुख्य काम ऊपर से ली गई योजनाओं को लागू करने का होता था। वह स्वयं योजना बनाने की प्रक्रिया में हिस्सेदार नहीं थी। योजना पहले ही कुछ राय बहादुरों के साथ बन्द कमरों की बैठकों में बन जाया करती थी, जिसे डिस्ट्रिक्ट कोऑर्डिनेटर टीमों को लागू करना होता था। हमने बहुत पहले एक सुझाव पत्र में नेतृत्व के साथियों को यह सुझाव दिया था कि आन्दोलन में आगे क्या किया जाना है इसका फैसला लेने की पूरी प्रक्रिया को अंजाम देने के लिए नियमित तौर पर जनरल बॉडी मीटिंग बुलायी जाये जिसमें कि सभी संघर्षरत मारुति सुज़ुकी मज़दूर और साथ ही सभी सहयोगी संगठनों को बुलाया जाय। इससे सभी संगठनों की रायों को सभी मज़दूरों के सामने रखा जा सकेगा, उस पर खुली चर्चा हो सकेगी और उसके आधार पर बहुमत के निर्णय को लागू किया जा सकेगा। इस प्रक्रिया को अपनाने के कई लाभ होते। एक तो यह कि आन्दोलन में आगे मिलने वाली सफलता या असफलता के लिए सभी मज़दूर अपने आपको ज़िम्मेदार महसूस करते। सभी मज़दूरों का रा. जनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण होता, आम मज़दूर राजनीतिक फैसले लेना सीखते और भविष्य के लिए भी मज़दूरों के बीच राजनीतिक और सां. गठनिक चेतना का विकास होता। ऐसा न होने पर बहुत ख़राब स्थिति पैदा होने की सम्भावना बनी रहती है। अगर सफलता मिलती है तो नेतृत्व तुरन्त देवतुल्य स्थिति में पहुँच जाता है और अगर असफलता मिलती है तो उसका पूरा ठीकरा नेतृत्व के सिर फोड़ दिया जाता है। जनवादी और पारदर्शी निर्णय प्रक्रिया को अपनाने से हार हो या जीत, मज़दूर उसकी ज़िम्मेदारी लेना सीखते और उससे सकारात्मक-नकारात्मक सबक लेना सीखते। इसके अभाव में अधिकांश मज़दूर निर्णय लेने की प्रक्रिया में पैस्सिव भूमिका निभाते हैं। इस ट्रेड यूनियन जनवाद की कमी के कारण और भी कई नुकसान होते हैं।

इसके कारण निर्णय लेने का पूरा बोझ नेतृत्व के कुछ साथियों के कन्धे पर आ जाता है। इसके कारण एक तनाव की स्थिति बनती है। इस स्थिति में नेतृत्व सलाह-सुझाव देने वाले उन लोगों पर निर्भर होता जाता है, जो "ज्ञानी" होने का दावा करते हैं और "ज्ञानी" दिखने का प्रयास करते हैं। मारुति सुज़ुकी के आन्दोलन में भी यह हुआ है। चूँकि निर्णय लेने की कोई जनवादी प्रक्रिया मौजूद नहीं थी, इसलिए कुछ राय बहादुर बन्द कमरों में राय देने का काम करते रहे। कभी उम्रदराज़ी का, कभी बौद्धिक आभामण्डल का और कभी कानूनी मामलों पर सहायता करने के ज़रिये ऐसे लोग खुसर-फुसर और कानाफूसी करते हुए आन्दोलन के नेतृत्व की राय बनाते रहे। यहाँ अभी हम यह सवाल नहीं उठा रहे हैं कि इन राय बहादुरों की राय सही थी या ग़लत। यहाँ सवाल यह है कि ये तरीका ही ग़लत और ग़ैर-जनवादी था। ये राय बहादुर लोग कभी भी अपनी राय और सुझाव को खुले तौर पर सभी मज़दूरों के सामने नहीं रखते, बल्कि नेतृत्व के चन्द लोगों के साथ अलग से कानाफूसी कर उनकी राय बनाते हैं। मज़े की बात यह है कि ये ही वे लोग हैं जो आजकल "मज़दूर जनवाद", "ट्रेड यूनियन की स्वतन्त्रता", आदि को लेकर सबसे ज़्यादा चीख़-चिल्लाहट मचा रहे हैं! लेकिन वे खुद ही अपनी राय और सुझाव खुले तौर पर सभी मज़दूर साथियों के बीच ले जाने से डरते हैं और बन्द कमरों की खुसर-फुसर पर ज़्यादा भरोसा करते हैं! अब आते हैं इस सवाल पर कि इन राय बहादुरों की रायें सही रही हैं या ग़लत। इन राय बहादुरों की रायों और सुझावों के कारण ही आन्दोलन में कई बार सही फैसले नहीं लिये जा सके। मिसाल के तौर पर, जब केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की समिति एक जगह बैठने का प्रस्ताव का वि. रोध कर रही थी, तो भी इन राय बहादुरों की मौन सहमति उनके साथ थी; जब दिल्ली में ऑटोवर्कर सम्मेलन के बाद जन्तर-मन्तर तक रैली निकालने का प्रस्ताव आया तो भी इन राय बहादुरों ने पूरी कोशिश की कि रैली न निकल सके; और अब जबकि संघर्ष के केन्द्र को दिल्ली स्थानान्तरित करने का प्रस्ताव रखा जा रहा है, तो भी ये ही राय बहादुर केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के ऐसा न होने देने के प्रयास को सहमति और समर्थन दे रहे हैं। इनकी रायों के कारण ही सही रणनीति और रणकौशल को अपनाने में कई अवसरों पर चूक हो चुकी है। इनकी पूरी राजनीति ही जोड़-तोड़ और दाँव-पेच की राजनीति है और इस राजनीति ने आन्दोलन को बहुत नुकसान पहुँचाया है। इसके अलावा, जिन संगठनों से ये राय बहादुर जुड़े हैं उन्होंने अन्य संगठनों और विशेषकर 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के बारे में कुत्सा-प्रचार की राजनीति करके भी आन्दोलन में तोड़-फोड़ ही पैदा करने का काम किया है। मज़दूरों के बीच में इन्होंने प्रचार किया कि अमुक संगठन तो बस किताबें छापता है, इन्होंने किताबों का व्यवसाय कर रखा है, वगैरह। हम मानते हैं कि कुत्सा-प्रचार की राजनीति किसी भी आन्दोलन के लिए नुकसानदेह होती है। सीधे राजनीतिक बहस-मुबा. हसे में उतरने की बजाय कुत्साप्रचार, कानाफूसी, खुसर-फुसर करना वास्तव में इन राय बहादुरों की कायरता को दिखलाता है। मारुति सुज़ुकी आन्दोलन के नेतृत्व को भी ऐसे तत्वों से सावधान रहना चाहिए।

ये कुछ प्रमुख कमज़ोरियाँ हैं जिनसे मुक्त होना आज मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन के लिए बेहद अहम है। इसके बिना, आन्दोलन के लिए सही रणनीति और रणकौशल अपना पाना मुश्किल होगा। इन कमियों को दूर करने के साथ-साथ भविष्य में एक सही रणनीति को अपनाने के लिए समस्त मज़दूरों के साथ एक बैठक की जानी चाहिए, जिसमें कि सभी सहयोगी संगठनों के प्रतिनिधियों को बुलाया जाना चाहिए। सभी की रायों को सुनने के बाद जनरल बॉडी को अपना निर्णय लेना चाहिए। यही सही तरीका होगा और इसी तरीके से किसी सही निर्णय तक पहुँचा जा सकता है।

हमारे सुझाव

1) संघर्ष के केन्द्र को दिल्ली स्थानान्तरित किया जाय। हरियाणा में आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सकता है, यह पिछले आठ माह में सिद्ध हो चुका है। न तो गुड़गाँव में, न रोहतक में और न ही कैथल में। अब वहीं गोल-गोल घूमते रहने से कोई लाभ नहीं होगा। चण्डीगढ़ में प्रदर्शन की इजाज़त मिलने की कोई सम्भावना नहीं है। और दिल्ली में डेरा डालने के हमारे पास पर्याप्त कारण हैं। पहली बात, मारुति सुज़ुकी का मुद्दा राष्ट्रीय मुद्दा है और उस पर दबाव बनाने की सही जगह दिल्ली है। दूसरा, दिल्ली में हमारे संघर्ष को बेहतर मीडिया कवरेज मिल सकता है और इससे भी कम्पनी और सरकार पर दबाव बन सकता है। तीसरा, दिल्ली की तमाम रैडिकल क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों और मज़दूर संगठनों का समर्थन हासिल हो सकता है। अगर आन्दोलन के लिए रसद गाँवों से गुड़गाँव तक पहुँचायी जा सकती है, तो दिल्ली तक भी पहुँचायी जा सकती है। वैसे तो हम यह क़दम उठाने में पहले ही बहुत देर कर चुके हैं और काफ़ी नुकसान हो चुका है, लेकिन अब भी अगर हम कुछ भी हासिल करने की उम्मीद कर सकते हैं, तो उसका रास्ता सिर्फ़ यही है। अगर कुछ हासिल होना होगा तो इसी रास्ते से हो सकता है।

2) दिल्ली में संघर्षरत मारुति सुज़ुकी मज़दूरों को जन्तर-मन्तर पर अनिश्चित-कालीन धरने पर बैठना चाहिए। कम्पनी की वर्दी में अपने परिवारों के साथ बैठे मारुति मज़दूरों की मीडिया उपेक्षा नहीं कर सकता और शहर में नागरिकों के बीच भी यह चर्चा का विषय बनेगा।

3) हमें अपनी माँग हरियाणा के मुख्यमन्त्री या किसी अन्य मन्त्री से करने की बजाय, सीधे प्रधानमन्त्री और केन्द्रीय श्रम मन्त्री से हस्तक्षेप की माँग करनी चाहिए। हरियाणा सरकार के पास प्रधानमन्त्री और केन्द्रीय श्रम मन्त्री को दिये जाने वाले हर माँगपत्रक और ज्ञापन की प्रतिलिपि ज़रूर भेजी जानी चाहिए क्योंकि इससे हरियाणा सरकार पर भी दबाव बनेगा। लेकिन हरियाणा सरकार का रवैया तो पहले ही

(पेज 11 पर जारी)

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? (उन्नीसवीं किस्त)

उत्तर-पूर्व और कश्मीर की जनता के साथ भारतीय राज्य का ऐतिहासिक विश्वासघात

इस धारावाहिक लेख के पिछले अंक में हमने देखा कि भारत में राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं और उपराष्ट्रीयताओं की विलक्षण विविधता के बावजूद भारतीय संविधान एक अतिकेन्द्रीकृत संघीय ढाँचे की आधारशिला रखता है। यही नहीं संविधान में मौजूद प्रावधानों का इस्तेमाल करके केन्द्र राज्यों की औपचारिक स्वायत्तता को भी छीन सकता है। वैसे तो पिछले छह दशकों में केन्द्र ने लगभग सभी राज्यों की स्वायत्तता पर हमले किये हैं, परन्तु उत्तर-पूर्व के राज्यों और जम्मू-कश्मीर की जनता की स्वायत्तता और आज़ादी की आकांक्षाओं पर इन हमलों ने विशेष बर्बर रूप अख़्तियार किया है। उत्तर-पूर्व में 1958 से और कश्मीर में 1990 से ही कुख़्यात सुरक्षा बल विशेष अधिकार अधिनियम (आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर्स एक्ट) लागू है जिसकी वजह से चुनावों की रस्म अदायगी होने के बावजूद वहाँ व्यवहारत: सैनिक शासन की स्थिति है क्योंकि सुरक्षा बलों को असीमित अधिकार प्राप्त हैं। इसी काले क़ानून का लाभ उठाकर भारतीय सेना और अर्धसैनिक बलों ने उत्तर-पूर्व में पिछले पाँच दशकों से और कश्मीर घाटी में पिछले दो दशकों से आतंक का नंगा नाच मचाया है और इन राज्यों की आम जनता के मानवाधिकारों का बेधड़क हनन किया है। ग़ौरतलब है कि मानवाधिकारों का मख़ौल उड़ाता यह क़ानून पूरी तरह से संविधानसम्मत है। इस अंक में हम उत्तर-पूर्व के इतिहास पर नज़र डालकर यह देखेंगे कि किस प्रकार भारतीय राज्य ने संघात्मक ढाँचे के तमाम दावों को धता बताते हुए वहाँ की अनेक नृजातीय (एथनिक) राष्ट्रीयताओं की भावनाओं और आकांक्षाओं को निर्ममता से कुचला।

उत्तर-पूर्वी राज्यों की जनता के साथ भारतीय राज्य के छल-कपट की त्रासद दास्तान

वैसे तो भौगोलिक दृष्टि से हर देश का एक उत्तर-पूर्वी क्षेत्र होता है परन्तु भारत के सन्दर्भ में जब उत्तर-पूर्व की बात होती है तो इसका तात्पर्य महज़ भौगोलिक दिशासूचक नाम नहीं होता है। यह सम्बोधन केन्द्र से एक ऐसे क्षेत्र की भौगोलिक दिशा की ओर इंगित करता है जिसकी संस्कृति एवं इतिहास देश के अन्य क्षेत्रों से बिल्कुल जुदा है। साथ ही साथ यह राज्यसत्ता से समस्यापूर्ण सम्बन्ध रखने वाले क्षेत्र की ओर भी इशारा करता है। साथ ही यह भी ध्यान देना ज़रूरी है कि हालाँकि इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की संस्कृति और इतिहास में समानता और समरूपता के कुछ तत्व हैं, लेकिन उनमें आश्चर्यजनक विविधताएँ भी हैं। कुल आठ राज्यों (असम, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, मिज़ोरम, नगालैण्ड) में विभाजित उत्तर-पूर्व का क्षेत्रफल देश के कुल क्षेत्रफल का 9 फ़ीसदी और इसकी आबादी देश की कुल आबादी का 3.6 फ़ीसदी है। इस विरल आबादी वाले क्षेत्र में 70 नृजातीय समूह और उपसमूह रहते हैं और यहाँ लगभग 400 भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। यहाँ के सभी नृजातीय समूह आर्य या द्रविड़ मूल के नहीं बल्कि मंगोल मूल के हैं। यहाँ की अधिकांश भाषाएँ तिब्बती-बर्मी और तिब्बती-चीनी भाषा परिवारों की हैं।

ग़ौरतलब है कि ब्रह्मपुत्र नदी का पूर्वी हिस्सा भूराजनीतिक रूप से पहली बार भारत के उपनिवेशीकरण के बाद ही शेष भारत से जुड़ा। इसके पहले कभी भी यह क्षेत्र किसी भी भारतीय साम्राज्य का हिस्सा नहीं था। इस क्षेत्र का कोई एक राजा कभी नहीं था। अंग्रेज़ इस क्षेत्र के भूराजनीतिक और सामरिक महत्व को देखते हुए इसे भारत और चीन के बीच एक 'बफ़र रीजन' बनाना चाहते थे जो सम्भावित चीनी विस्तार के लिए कुशन का काम करता और उनके व्यापारिक हितों के अनुकूल रहता। लेकिन मैदानी क्षेत्रों की जनता के विद्रोहों से अलग-थलग करने के लिए अंग्रेज़ों ने बड़ी ही चालाकी से उत्तर-पूर्व की आबादी की शेष भारत की आबादी से पारस्परिक अन्तरक्रिया नहीं होने दी। इसकी वजह से भूराजनीतिक दृष्टि से शेष भारत से जुड़ने के बावजूद इस क्षेत्र की जनता का सांस्कृतिक अलगाव नहीं कम हुआ। आज़ादी के बाद भारतीय राज्य द्वारा इस क्षेत्र की खनिज और वन्य सम्पदा का दोहन करने से आर्थिक शोषण का भी पहलू जुड़ गया जिसने इस अलगाव को और बढ़ाया।

औपनिवेशिक शासन के अन्तिम दौर में और आज़ादी के बाद सांस्कृतिक अलगाव और आर्थिक शोषण ने उत्तर-पूर्व की विभिन्न जनजातियों में प्रतिरोध की चेतना एक ख़ास क़िस्म के नृजातीय राष्ट्रवाद के रूप में पनपी। केन्द्रीय सत्ता द्वारा किये गये बर्बर दमन ने इस प्रतिरोध की चेतना को और भी विकसित किया। नगा जैसी कुछ जनजातियाँ अपने कई उपसमूहों को मिलाकर एक राष्ट्र के रूप में विकसित हुईं तो कुछ राष्ट्रीयताओं और उपराष्ट्रीयताओं के रूप में। इन राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं के प्रतिरोध का साझा बिन्दु दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता का विरोध था। परन्तु इनमें आपसी अन्तरविरोधों का भी एक लम्बा इतिहास रहा है। मसलन नगा-कुकी विवाद, नगा-मेइती विवाद, नगा-जोमी विवाद, असमी-बोडो विवाद आदि।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद से आज़ादी के बाद भारतीय बुर्जुआ राज्यसत्ता ने उत्तर-पूर्व के राज्यों का पुनर्गठन किया। इस पुनर्गठन का आधार महज़ प्रशासकीय सहूलियतें थीं जिसकी वजह से कई मामलों में एक ही जनजाति कई राज्यों में बँट गयी और जनजातियों की राष्ट्रीय आकांक्षाएँ कुचल दी गयीं। इस क़िस्म के पुनर्गठन से नये विवाद भी उभरे, मसलन ग्रेटर नगालैण्ड विवाद, नगा-मणिपुर विवाद, असमी-बोडो विवाद आदि।

यदि भारतीय संघात्मक ढाँचा वास्तव में आत्मनिर्णय के अधिकार को मान्यता देने के बाद अस्तित्व में आता तो उत्तर-पूर्व भारतीय संघ के भीतर अपने आपमें कई नृजातीय राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं का संघ होता और इन राष्ट्रों-राष्ट्रीयताओं के भीतर भी कई उपराष्ट्रीयताओं और भाषिक समुदायों के अपने स्वायत्तशासी क्षेत्र होते। परन्तु ऐसा न होकर अतिकेन्द्रीयकृत भारतीय संघात्मक ढाँचा ऊपर से थोप दिया गया। इस वजह से उत्तर-पूर्व की जनता दिल्ली की सत्ता को औपनिवेशिक काल की निरन्तरता में ही देखती रही।

उत्तर-पूर्व के विभिन्न राज्यों के इतिहास पर निगाह डालने से भारतीय राज्यसत्ता का ऐतिहासिक विश्वासघात स्पष्ट रूप से सामने आता है। मणिपुर में औपनिवेशिक काल में ही हिजाम इराबोट के करिश्माई नेतृत्व में सामन्तवाद और उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ एक शक्तिशाली जनवादी आन्दोलन उभरा जिसकी वज़ह से अंग्रेज़ों के जाने के बाद 'मणिपुर संविधान क़ानून 1947' पास हुआ जिसके परिणामस्वरूप मणिपुर राज्य आधुनिक ढंग-ढर्रे पर एक संवैधानिक राजतन्त्र के रूप में सामने आया। नये संविधान के तहत मणिपुर में चुनाव भी हुए और विधानसभा भी गठित हुई। परन्तु 1947 में ही भारत सरकार के प्रतिनिधि वी.पी. मेनन ने राज्य में गिरती

(पेज 15 पर जारी)

साहसपूर्ण संघर्ष और क़ुर्बानियों के बावजूद क्यों ठहरावग्रस्त है मारुति का आन्दोलन?

(पेज 10 से आगे)

साफ़ हो चुका है।

4) दिल्ली में 'इंसाफपसन्द नागरिकों के नाम मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों की अपील' नामक पर्चा जारी कर कड़ी संख्या में वितरित किया जाना चाहिए जिसमें हमें समस्त जनता को अपने पक्ष से अवगत कराना चाहिए और मारुति मज़दूरों के शोषण और उत्पीड़न की सच्चाई से अवगत कराना चाहिए।

5) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एन.सी.आर.) के सभी मज़दूर संगठनों को समर्थन की अपील जारी करनी चाहिए और उन्हें स्वयं मिलकर अपील देनी चाहिए।

6) राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के सभी मज़दूरों के नाम एक पर्चा निकाला जाना चाहिए और अन्य संगठनों के कार्यकर्ताओं के साथ मारुति सुज़ुकी मज़दूरों को टोलियाँ बनाकर एन.सी.आर. के सभी औद्योगिक क्षेत्रों में इस पर्चे को वितरित करना चाहिए।

7) आन्दोलन के अहम फ़ैसलों को लेने के लिए संघर्षरत मज़दूरों की जनरल बॉडी को ज़िम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए, जो कि जनवादी और पारदर्शिता के उसूलों पर अमल करते हुए, सभी सहयोगी और समर्थक संगठनों की रायों पर खुले में विचार-विमर्श के बाद आन्दोलन के ज़रूरी फ़ैसले ले। इससे सभी मज़दूरों की राजनीतिक चेतना का विकास तो होगा ही और साथ ही आन्दोलनों को संगठित करने में उनका शिक्षण-प्रशिक्षण भी होगा।

8) यूनियन को क़ानूनी मसले को अपने हाथ में लेकर जल्द से जल्द उन लोगों को रिहा करवाना चाहिए जिनकी ज़मानत हो सकती है। मसलन, 19 मई को गिरफ्तार कुछ मज़दूर नेताओं और कुछ संगठन के प्रतिनिधियों पर हत्या के प्रयास का आरोप लगाया गया है। कोई भी अच्छा वकील आपको बता सकता है कि यह आरोप इन लोगों पर सिद्ध करना बहुत मुश्किल है और हाई कोर्ट में याचिका के ज़रिये इस आरोप को ही रद्द करवाया जा सकता है। निश्चित तौर पर, इसमें 5-6 दिन लग सकते हैं, लेकिन इससे ज़्यादा नहीं। आन्दोलन के अहम नेता और सहायकों के जेल में रहने से आन्दोलन को नुकसान ही हो रहा है और यदि उन्हें निकलवाना सम्भव है तो इस कार्रवाई को किसी अन्य के भरोसे रहकर रोके रखने में कोई समझदारी नहीं होगी।

निष्कर्ष

मारुति सुज़ुकी के सभी मज़दूर साथी जानते हैं कि 'मज़दूर बिगुल' शुरू से आपके साथ रहा और पूरी ताक़त के साथ आपके साथ रहा है। हमारे रायों और सुझावों के बाद यूनियन नेतृत्व ने चाहे जो भी कदम उठाया है, हम संघर्ष में साथ रहे हैं। आगे भी हमारे उपरोक्त सुझावों के बाद यूनियन नेतृत्व चाहे जो भी निर्णय ले, हम संघर्ष में मौजूद रहेंगे और उसके साथ खड़े रहेंगे। लेकिन हम सभी नेतृत्व के साथियों, सभी समर्थक-सहयोगी संगठनों और साथ ही सभी सामान्य मज़दूर साथियों से अपील करेंगे कि इस समीक्षा पर विचार करें, इन सुझावों पर विचार करें और गहराई से इन पर सोचने के बाद फ़ैसला लें। क्योंकि हमारे आन्दोलन के लिए यह एक नाजुक मौक़ा है। इस मौक़े पर हम एक सही रणनीति अपनाकर आन्दोलन को सही दिशा में आगे बढ़ा सकते हैं, और एक ग़लत नीति अपनाकर इसे विसर्जन की ओर ले जा सकते हैं। विशेष तौर पर, हम नेतृत्व के साथियों से उम्मीद रखते हैं कि वे इन बातों पर विचार करेंगे।

हमने इस समीक्षा में जो आलोचना रखी है, वह एक कॉमरेडाना नज़रिये से रखी है। जो सत्य है उसे हमने बिना किसी लाग-लपेट, बिना किसी भूमिका के कह दिया है; लिहाज़ा, कुछ बातें कड़वी लग सकती हैं। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि सच कड़वा ही होता है। लेकिन विवेक इसी बात में है कि कड़वे सच को समझा जाय और इस समझ के आधार पर एक सही योजना तैयार की जाय। इसी पर आन्दोलन का भविष्य निर्भर करता है। अगर मारुति सुज़ुकी के हमारे मज़दूर साथियों या सहयोगी-समर्थक संगठनों को हमारे इस विश्लेषण और सुझावों से कोई भी सहमति-असहमति हो, तो वह हमें लिखित रूप में अपनी प्रतिक्रिया भेज सकता है। हम ऐसी किसी भी प्रतिक्रिया को अवश्य प्रकाशित करेंगे और आगे उस पर चर्चा और बहस को भी 'मज़दूर बिगुल' में स्थान देंगे।

जनवादी अधिकारों के लिए आन्दोलन और मज़दूर वर्ग

साम्राज्यवाद के वर्तमान दौर में, भारत जैसे पिछड़े पूँजीवादी देश में, समाजवाद के लक्ष्य को लेकर नये सिरे से संघर्ष छेड़ने की तैयारी करते हुए, जनवाद या जनवादी अधिकारों की लड़ाई के बारे में आम तौर पर मज़दूर वर्ग के आन्दोलन का नज़रिया क्या होना चाहिए, इसके बारे में हम संक्षेप में कुछ बातें रखना चाहेंगे।

जब राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों का दौर था तो कारख़ानों में विदेशी पूँजीपतियों के साथ-साथ देशी पूँजीपतियों से भी लड़ते हुए मज़दूर वर्ग औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध व्यापक राजनीतिक जनान्दोलनों में भागीदारी कर रहा था। गाँवों में जो मज़दूर थे, वे बँधुआ मज़दूरी और बेगारी से मुक्ति की जनवादी लड़ाई लड़ रहे थे और सामन्ती भूस्वामियों के ख़िलाफ़ तमाम काश्तकारों के साथ उनका साझा मोर्चा बनता था।

1947 में औपनिवेशिक शासन की विदाई हुई, 1950 में एक बुर्जुआ जनवादी गणराज्य का संविधान लागू हुआ पर बुर्जुआ जनवाद का यह प्रोजेक्ट न केवल अधूरा था, बल्कि विकृत भी था। न केवल सामन्ती अवशेष लम्बे समय तक बने रहे, बल्कि पूँजीवाद ने पुराने मध्ययुगीन मूल्यों-संस्थाओं को भी काफ़ी हद तक थोड़ा हेर-फेर करके बनाये रखा। संविधान का अस्थि-पंजर 1935 के औपनिवेशिक क़ानून से बना था तथा क़ानून-व्यवस्था, न्यायपालिका, पुलिस-व्यवस्था और नौकरशाही का ढाँचा भी मूलत: पहले जैसा ही था। राष्ट्रीय आन्दोलन एक जनान्दोलन था, लेकिन जनक्रान्ति नहीं था क्योंकि उसके बुर्जुआ नेतृत्व ने जनान्दोलनों का दबाव बनाकर सत्तासीन होने तक की यात्रा तो तय की थी, लेकिन जनपहलकदमी को हर समय उसने पीछे धकेला और हर निर्णायक बिन्दु पर जनाकांक्षाओं के साथ विश्वासघात किया। फलत: राष्ट्रीय आन्दोलन एक आंशिक, क्रमिक और 'पैस्सिव' राजनीतिक क्रान्ति के रूप में सत्ता हस्तान्तरण का निमित्त तो बना, लेकिन सामाजिक जीवन में जनवादी मूल्यों-संस्थाओं की तथा जनता में जनवादी चेतना की कमी एक गम्भीर समस्या बनी रही। बुर्जुआ जनवाद का प्रोजेक्ट इन अर्थों में अधूरा और विकृत तो था ही कि इसने न तो साम्राज्यवादी विश्व से निर्णायक विच्छेद किया, न ही भूमि-सम्बन्धों का क्रान्तिकारी ढंग से पूँजीवादीकरण किया। साथ ही, यह इन अर्थों में भी अधूरा और विकृत था कि समाज में भी जनवादी चेतना की कमी थी तथा नौकरशाही, पुलिस, आम क़ानूनों और श्रम क़ानूनों का चरित्र भी रस्मी या नाममात्र का ही जनवादी था। यूँ तो बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति करने वाले अमेरिका और यूरोप के पूँजीपति वर्ग ने भी सत्तारूढ़ होने के बाद प्रबोधनकालीन बुर्जुआ दार्शनिकों के जनवादी आदर्शों को पूँजी के हित में तोड़-मरोड़कर रस्मी और संकुचित बना दिया था, पर भारतीय शासकों ने यह काम सौ गुना अधिक बेशर्म और विश्वासघाती ढंग से किया। पिछले साठ वर्षों के दौरान पूँजीवाद का जो क्रमिक विकास हुआ है, उसकी स्वतंत्र स्वयंस्फूर्त परिणति के तौर पर कुछ जनवादी संस्थाएँ और आकांक्षाएँ ज़रूर पैदा हुई हैं लेकिन दूसरी विरोधी गति शासक वर्गों और उनके वैश्विक सीनियर पार्टनर्स द्वारा जनवादी अधिकारों और आकांक्षाओं के निरन्तर दमन की रही है। उद्योगों के विस्तार ने जनवादी संस्थाएँ-आकांक्षाएँ पैदा की हैं, पर अनुत्पादक परजीवी वित्तीय तंत्र की सर्वग्रासी जकड़बन्दी ने सर्वसत्तावाद और निरंकुश स्वेच्छाचारिता का आधार मज़बूत बनाया है। नवउदारवाद के विगत दो दशकों के दौरान यह दूसरी गति ज़्यादा प्रबल हुई है। ऐसे समय में हम मज़दूर वर्ग के जनवादी अधिकारों की लड़ाई के बारे में या जनवादी अधिकारों की लड़ाई में मज़दूर वर्ग की भूमिका के बारे में सोच-विचार रहे हैं।

यह सही है कि उत्पादन-सम्बन्धों के नज़रिए से यदि देखें तो पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध ने आज भारतीय समाज में अपना प्रभावी वर्चस्व स्थापित कर लिया है, और ख़ासकर पिछले बीस वर्षों के दौरान श्रम और पूँजी के अन्तरविरोध ज्यादा से ज्यादा तीखे होते चले गये हैं। आर्थिक धरातल पर भारत के मज़दूर वर्ग का जो भी टकराव होता है, वह पूँजी की लूट और पूँजीवादी सत्ता से होता है, हालाँकि वह पूँजी की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए नहीं, बल्कि अपने आसन्न हितों के लिए तथा पूँजी के चौतरफ़ा हमलों से आत्मरक्षा के लिए लड़ता है। राजनीतिक ऊपरी ढाँचे के नज़रिए से यदि देखें तो मज़दूर वर्ग को रोज़-रोज़, कदम-कदम पर, अपने जनवादी अधिकारों को लेकर लड़ने की ज़रूरत पड़ती है।

जनवादी अधिकारों की यह लड़ाई मज़दूर वर्ग के लिए आज बेहद ज़रूरी इसलिए भी हो गई है कि लम्बे संघर्षों से जो अधिकार उसने हासिल किये थे, वे भी आज, मज़दूर आन्दोलन के उलटाव-बिखराव के दौर में उससे छिन चुके हैं। नवउदारवाद की नीतियों के दौर में मज़दूरों का 93 प्रतिशत हिस्सा ठेका, दिहाड़ी, कैज़ुअल और पीसरेट मज़दूरों का है। परम्परागत यूनियनें इन मज़दूरों के हितों को लेकर लड़ने का काम छोड़ चुकी हैं और बिखरे होने के चलते इन अनौपचारिक मज़दूरों की ख़ुद की सौदेबाज़ी की ताक़त बहुत कम हो गयी है। इस मज़दूर आबादी को नये सिरे से, नयी परिस्थितियों में संगठित होने और लड़ने के तौर-तरीक़े ईजाद करने हैं और आगे बढ़ना है।

इसमें सन्देह नहीं कि मज़दूरों को पूँजी की सत्ता और पूँजीवादी आर्थिक सम्बन्धों के विरुद्ध लड़ना होगा, लेकिन वे यदि अपने जनवादी अधिकारों के लिए नहीं लड़ सकते तो पूँजीवाद के विरुद्ध राजनीतिक-आर्थिक संघर्ष भी नहीं कर सकते। 1894-1902 के दौरान रूसी कम्युनिस्ट आन्दोलन में "अर्थवादियों" ने यह पोज़ीशन ली थी कि रूस में पूँजीवाद के क़ायम होने के बाद मज़दूर वर्ग के लिए रा. जनीतिक संघर्ष – यानी जनवाद के लिए संघर्ष – की ज़रूरत नहीं है। जब पहला विश्वयुद्ध चल रहा था, उस समय भी कुछ अर्थवादियों और अर्द्ध-अराजकतावादियों ने यह विचार रखा था कि इजारेदार पूँजीवाद की अवस्था में जनवाद के लिए संघर्ष की कोई आवश्यकता नहीं है (इसी दृष्टि को अपनाकर प्याताकोव, बुखारिन आदि ये लोग राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के नारे का विरोध कर रहे थे)। ऐसे लोगों को लेनिन ने जो जवाब दिया था, उसके कुछ आम सूत्रीकरण आज हमारे लिए भी बहुत महत्वपूर्ण हैं।

लेनिन ने लिखा था : "आम तौर से पूँजीवाद और ख़ास तौर से साम्राज्यवाद जनवाद को भ्रम बना देता है, हालाँकि पूँजीवाद उसके साथ ही जन साधारण में जनवादी आकांक्षाएँ पैदा करता है, जनवादी संस्थाओं की सृष्टि करता है, जनवाद को अस्वीकृत करने वाले साम्राज्यवाद तथा जनवाद की आकांक्षा करने वाले जन साधारण के बीच विरोध को संगीन बनाता है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का तख़्ता अत्यन्त "आदर्श" जनवादी परिवर्तनों द्वारा भी नहीं, बल्कि केवल आर्थिक क्रान्ति द्वारा उलटा जा सकता है। लेकिन जो सर्वहारा वर्ग जनवाद के संघर्ष में शिक्षित नहीं है, वह आर्थिक क्रान्ति सम्पन्न करने में भी असमर्थ है।..."

बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए इसी लेख में आगे वे कहते हैं: "जनवाद की समस्या का मार्क्सवादी हल यह है कि अपना वर्ग संघर्ष चलाने वाला सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग का तख़्ता उलट देने की तैयारी करने और अपनी विजय सुनिश्चित करने के लिए बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ सभी जनवादी संस्थाओं और आकांक्षाओं का इस्तेमाल करे। ऐसा इस्तेमाल कुछ आसान काम नहीं है। "अर्थवादियों", तोलस्तोयपंथियों इत्यादि को यह बात अकसर उसी तरह "बुर्जुआ" और अवसरवादी विचारों के लिए अक्षम्य रियायत प्रतीत होती है जिस तरह "वित्तीय पूँजी के युग में" राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की वक़ालत प. कीयेव्स्की को बुर्जुआ विचारों के लिए अक्षम्य रियायत प्रतीत होती है। मार्क्सवाद हमें सिखाता है कि मौजूदा, पूँजीवादी समाज की बुर्जुआ वर्ग द्वारा सृजित और विकृत की जाने वाली जनवादी संस्थाओं के इस्तेमाल को तिलांजलि देकर "अवसरवाद से लड़ने" का अर्थ है अवसरवाद के सामने पूर्णत: घुटने टेक देना!" (लेनिन: 'प. कीयेव्स्की (यू. प्याताकोव) को जवाब', 'मज़दूर आन्दोलन में जड़सूत्रवाद और संकीर्णतावाद का विरोध' संकलन, मास्को 1986, पृ. 81-82)

भारत जैसे उत्तर-औपनिवेशिक कृषिप्रधान, पिछड़े पूँजीवादी समाज में, जहाँ पूँजीवादी जनवाद का प्रा. ेजेक्ट पहले से ही अधूरा और विकृत रहा है, वहाँ यह और अधिक ज़रूरी हो जाता है कि भारतीय मज़दूर वर्ग अपने जनवादी अधिकारों के लिए लड़े, वह बुर्जुआ वर्ग पर जनवाद के वायदों, संवैधानिक घोषणाओं और क़ानूनी प्रावधानों को अमल में लाने के लिए दबाव बनाये और बुर्जुआ जनवाद के संकुचित (तथा लगातार और अधिक संकुचित होते जाते) स्पेस को विस्तारित करने के लिए संघर्ष करे। यह बेहद ज़रूरी है क्योंकि अतीत में भी अर्थवादी-ट्रेडयूनियनवादी नेतृत्व ने मज़दूरों को या तो महज आर्थिक संघर्षों में उलझाये रखा या मात्र उनकी कुछ ऐसी ही जनवादी माँगों को (जैसे काम के घण्टे, ओवरटाइम, छुट्टी, आदि-आदि) उठाया जो जनता के अन्य वर्गों की साझा जनवादी माँग नहीं बनते थे। यह इसलिए भी बेहद ज़रूरी है क्योंकि जो अर्द्ध-अराजकतावादी सर्वहारा क्रान्तिकारी धाराएँ हैं वे बुर्जुआ जनवादी संस्थाओं और 'स्पेस' का इस्तेमाल करने को ही दक्षिणपंथ मानकर सिरे से खारिज करती रही हैं। यह इसलिए भी बेहद ज़रूरी है क्योंकि उदारीकरण-निजीकरण के दौर में रहा-सहा बुर्जुआ जनवादी स्पेस भी काफ़ी तेजी से सिकुड़ता जा रहा है। पहले जो अधिकार मज़दूरों ने लड़कर हासिल किये थे और जिनके लिए काग़ज़ों पर कई क़ानून आज भी मौजूद हैं, व्यवहारत: उनका कोई मतलब नहीं रह गया है।

मज़दूर वर्ग जब आठ घण्टे के कार्यदिवस, साप्ताहिक अवकाश, परिवार की बुनियादी ज़रूरतों (पौष्टिक भोजन, सुविधाजनक आवास, कपड़े, स्वास्थ्य और शिक्षा) को पूरा करने लायक न्यूनतम मज़दूरी, कार्यस्थल पर सुरक्षा और दुर्घटना की स्थिति में उचित मुआवज़े आदि की माँग करता है, तो ये माँगें मज़दूरी-व्यवस्था या अतिरिक्त श्रम के शोषण को समाप्त करने वाली माँगें नहीं हैं। ये माँगें बुर्जुआ जनवाद के दायरे के भीतर की माँगें हैं – ये वे माँगें हैं जिनका बुर्जुआ जनवाद वायदा करता है। ये मज़दूर वर्ग के जनवादी अधिकार और नागरिक आज़ादी की माँगें हैं। मज़दूर जब श्रम क़ानूनों को लागू करने और उनके दायरे को बढ़ाने की तथा श्रम विभाग एवं श्रम न्यायालयों के ढाँचे के जनवादीकरण की माँग उठाता है, तो ये भी बुर्जुआ जनवाद के सीमान्तों के भीतर की लड़ाई होती है, जिसके दौरान मज़दूर संगठित होना और अपनी माँगों को लेकर राज्यसत्ता से लड़ना सीखता है।

इससे दो कदम आगे बढ़कर मज़दूर वर्ग जब काम के अधिकार को मूलभूत अधिकार घोषित करने की माँग करता है, पूरी आबादी के लिए पौष्टिक भोजन, सुविधाजनक आवास, स्वास्थ्य-सेवा और समान शिक्षा सरकार द्वारा अनिवार्यत: मुहैया कराये जाने की माँग उठाता है, तो ये माँगें भी बुर्जुआ जनवादी दायरे के भीतर की ही माँगें हैं। ये माँगें पूँजीवादी शोषण और असमानता की समाप्ति की माँगें नहीं हैं। नागरिकों की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति सरकार की ज़िम्मेदारी है, इस बात को बुर्जुआ जनवाद भी सैद्धान्तिक तौर पर मानता है। ये माँगें उन्नत स्तर की बुर्जुआ जनवादी माँगें इस मायने में हैं कि मज़दूर वर्ग जैसे ही इन माँगों को उठाता है, परेशानहाल छोटे मालिक किसान, आम मध्यवर्गीय जमातें और जनता के अन्य हिस्से भी उसके साथ आकर खड़े हो जाते हैं। एक व्यापक जनान्दोलन की – एक व्यापक रणनीतिक संयुक्त मोर्चे की ज़मीन तैयार हो जाती है। ये माँगें जनवादी अधिकार की माँगें हैं, पर इनको लेकर किया जाने वाला संघर्ष उन्नत स्तर का होता है क्योंकि कोई उन्नत बुर्जुआ जनवाद भी इन माँगों को पूरा नहीं कर सकता (कुछ आंशिक रियायतें भले ही दे दे)। अत: इन माँगों पर व्यापक जनान्दोलन जब आगे बढ़ता है तो जनसमुदाय को पूँजीवादी जनवाद की सीमाएँ ख़ुद अपने अनुभव से दीखने लगती हैं। ऐसे जनान्दोलनों के दौरान जनता की सामूहिक पहलकदमी और सामूहिक

(पेज 13 पर जारी)

सर्वहारा वर्ग में व्याप्त ढुलमुलयक़ीनी, फूट, व्यक्तिवादिता आदि का मुक़ाबला करने के लिए उसकी राजनीतिक पार्टी के अन्दर कठोर केन्द्रीयता और अनुशासन होना ज़रूरी है

• लेनिन

... पुरानी प्रतिबद्धता तथा पार्टी अनुशासन का त्याग – यह है विरोध पक्ष की कुल प्राप्ति। इसका मतलब है बुर्जुआ वर्ग के हित में कुल सर्वहारा वर्ग का पूर्ण निःशस्त्रीकरण। इसका मतलब है वह टुटपुँजिया बिखराव, अस्थिरता और डटकर, एक होकर, संगठित होकर काम करने की अयोग्यता, जो ज़रा भी छूट मिलने पर किसी भी सर्वहारा क्रान्तिकारी आन्दोलन को अनिवार्यतः ख़त्म कर देगा। कम्युनिज़्म के दृष्टिकोण से पार्टी प्रतिबद्धता के त्याग का अर्थ होता है पूँजीवाद के पतन की पूर्ववेला से (जर्मनी में) कम्युनिज़्म की शुरुआती या बीच की नहीं, बल्कि एकदम सबसे ऊँची मंज़िल की ओर छलाँग मारना। रूस में (बुर्जुआ वर्ग का तख़्ता उलटने के बाद तीसरे वर्ष में) हम पूँजीवाद से समाजवाद में, अर्थात कम्युनिज़्म की निचली अवस्था में संक्रमण के पहले क़दमों से गुजर रहे हैं। वर्ग अभी क़ायम हैं और सत्ता पर सर्वहारा वर्ग का अधिकार होने के बाद बरसों तक सभी जगह क़ायम रहेंगे। हो सकता है कि इंगलैंड में, जहाँ किसान नहीं है (लेकिन फिर भी छोटे मालिक हैं!), यह काल और देशों से कुछ छोटा हो। वर्गों को समाप्त करने का मतलब सिर्फ़ ज़मींदारों और पूँजीपतियों को मिटाना ही नहीं है – वह काम तो हमने अपेक्षाकृत आसानी से पूरा कर लिया – उसका मतलब छोटे पैमाने पर माल पैदा करने वालों को भी मिटाना है और उन्हें ज़बर्दस्ती हटाया नहीं जा सकता, उन्हें कुचला नहीं जा सकता, हमें उनके साथ मिल-जुलकर रहना है, सिर्फ़ एक लम्बे समय तक, बहुत धीरे-धीरे सतर्कतापूर्ण संगठनात्मक काम करके ही इन लोगों को फिर से शिक्षित-दीक्षित किया जा सकता है और नये साँचे में ढाला जा सकता है (और यह किया जाना चाहिए)। ये लोग सर्वहारा वर्ग के चारों ओर एक टुटपुँजिया परिवेश पैदा कर देते हैं, जो सर्वहारा वर्ग में भी घर कर जाता है और उसे भ्रष्ट कर देता है, जिसके कारण सर्वहारा वर्ग लगातार टुटपुँजिया ढुलमुलयक़ीनी; फूट, व्यक्तिवादिता और हर्षातिरेक तथा घोर निराशा के बारी-बारी से आने वाले दौरों का शिकार रहता है। इन चीज़ों का मुक़ाबला करने के लिए आवश्यक है कि सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी के अन्दर कड़ी से कड़ी केन्द्रीयता और अनुशासन रहे ताकि 'सर्वहारा वर्ग की संगठनात्मक भूमिका (और वही उसकी मुख्य भूमिका है) सही तौर से, सफलता-पूर्वक और विजय के साथ पूरी की जा सके। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व पुराने समाज की शक्तियों और परम्पराओं के खिलाफ़ अनवरत संघर्ष है – खूनी और रक्तहीन, हिंसापूर्ण और शान्तिमय, सैनिक और आर्थिक, शैक्षिक और प्रशासनात्मक। लाखों और करोड़ों इन्सानों की आदत की ताक़त एक बहुत भयंकर ताक़त होती है। संघर्ष में तपी हुई एक लौह पार्टी के बग़ैर, एक ऐसी पार्टी के बग़ैर, जिसमें जनता की भावनाओं पर नज़र डालने और उन पर प्रभाव डालने की क्षमता हो, इस संघर्ष को सफलता-पूर्वक चलाना असम्भव है। करोड़ों छोटे

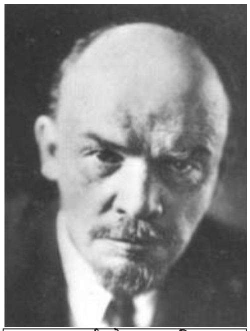

मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक और रूसी क्रान्ति के नेता वी.आई. लेनिन

मालिकों को "हराने" की अपेक्षा केन्द्रीभूत बड़े बुर्जुआ वर्ग को हराना हज़ार गुना आसान है; पर ये छोटे मालिक अपनी रोज़मर्रा की साधारण, अदृश्य, अननुभूत, हतोत्साहित सरगर्मियों से वही परिणाम पैदा कर देते हैं, जिनकी बुर्जुआ वर्ग को ज़रूरत है और जो बुर्जुआ वर्ग को फिर से बहाल करते हैं। जो कोई भी सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लौह अनुशासन को ज़रा भी कमज़ोर करता है (ख़ास तौर से उसके अधिनायकत्व के समय), वह वास्तव में सर्वहारा वर्ग के ख़िलाफ़ बुर्जुआ वर्ग का साथ देता है।

नेता-पार्टी-वर्ग-जनसाधारण के प्रश्न के साथ-साथ "प्रतिक्रियावादी" ट्रेड यूनियनों के प्रश्न को भी पेश किया जाना चाहिए। परन्तु पहले मैं अपनी पार्टी के अनुभव पर आधारित कुछ उपसंहारात्मक टिप्पणियाँ करूँगा। हमारी पार्टी में "नेताओं के अधिनायकत्व" पर हमले हमेशा से होते चले आये हैं : ऐसे हमले, मुझे याद आता है, सबसे पहले 1895 में किये गये थे, जब बाक़ायदा पार्टी अभी तो नहीं बनी थी, पर पीटर्सबर्ग में एक केन्द्रीय ग्रुप बनने लगा था, जो आगे चलकर ज़िलों के ग्रुपों का नेतृत्व अपने हाथ में लेने वाला था। हमारी पार्टी की नौवीं कांग्रेस (अप्रैल, 1920) में एक छोटा-सा विरोध पक्ष था, जो "नेताओं के अधिनायकत्व", "अल्पतंत्र" आदि के ख़िलाफ़ बोलता था। अतः जर्मनों के "वामपंथी कम्युनिज़्म" के इस "बचकाने मर्ज़" में कोई आश्चर्यजनक, नयी या भयंकर बात नहीं है। इस बीमारी से कोई ख़तरा नहीं होता और कभी-कभी तो उसके बाद शरीर पहले से भी मज़बूत होता है। दूसरी ओर, क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी काम की जल्दी अदला-बदली के कारण, जो संचालन केन्द्र को ही, नेताओं को ही ख़ास तौर से "छिपाकर" गुप्त रूप से रखने की ज़रूरत से सम्बन्धित थी, हमारी पार्टी में कभी-कभी बहुत ही ख़तरनाक घटनाएँ पैदा हो जाती थीं। सबसे बुरी घटना 1912 में हुई थी, जब मालिनोव्स्की नामक एक खुफ़िया एजेण्ट बोल्शेविकों की केन्द्रीय समिति में शामिल हो गया था। उसने हमारे बीसियों सबसे अच्छे और सबसे वफ़ादार साथियों के साथ ग़द्दारी की और उन्हें जेलखाने तथा निर्वासन में भिजवाया और उनमें से अनेकों के जीवन को जल्दी समाप्त करने में योग दिया। वह यदि और अधिक नुक़सान नहीं कर पाया, तो इसका कारण यही था कि क़ानूनी तथा ग़ैर-क़ानूनी काम के बीच हमने बहुत उचित सम्बन्ध स्थापित कर रखा था। पार्टी की केन्द्रीय समिति के सदस्य और दूमा में हमारे प्रतिनिधि मालिनोव्स्की को हमारा विश्वास प्राप्त करने के लिए हमारे क़ानूनी दैनिक अखबारों की स्थापना में हमारी मदद करनी पड़ी, जो ज़ारशाही के राज में भी मेन्शेविकों के अवसरवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष चलाते रहे तथा समुचित ढंग से प्रच्छन्न रूप में बोल्शेविक सिद्धान्तों का प्रचार भी करते रहे। एक हाथ से मालिनोव्स्की बीसियों सर्वोत्तम बोल्शेविक कार्यकर्ताओं को जेलखानों और फाँसीघरों में भिजवाता था, दूसरे हाथ से उसे क़ानूनी अख़बारों के ज़रिए हज़ारों नये बोल्शेविकों को शिक्षित और तैयार करने में मदद देनी पड़ती थी। जिन जर्मन (और अंग्रेज़ तथा अमरीकी, फ़्रांसीसी तथा इतालवी) साथियों के सामने इस वक़्त प्रतिक्रियावादी ट्रेड-यूनियनों के अन्दर क्रान्तिकारी काम करने का ढंग सीखने का सवाल है, उन्हें इस बात की ओर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिए।

इसमें शक नहीं है कि बहुत से देशों में, अधिकतर उन्नत देशों में भी कम्युनिस्ट पार्टियों के भीतर बुर्जुआ वर्ग खुफ़िया एजेण्टों को भेजता है और आगे भी भेजता रहेगा। इस ख़तरे से लड़ने का एक तरीक़ा यह है कि ग़ैर-क़ानूनी और क़ानूनी काम को होशियारी के साथ मिलाकर चलाया जाये।

(**वामपंथी कम्युनिज़्म एक बचकाना मर्ज़** के अंश)

जनवादी अधिकारों के लिए आन्दोलन और मज़दूर वर्ग

(पेज 12 से आगे)

सर्जनात्मकता निर्बन्ध होती है, तृणमूल (ग्रासरूट) स्तर पर नयी-नयी जनवादी संस्थाएँ जन्म लेती हैं और सामाजिक मूल्यों-मान्यताओं का भी आमूलगामी ढंग से जनवादीकरण होता है।

भारतीय जीवन में इन दिनों समृद्धि के शिखरों की तलहटी में जैसा नारकीय अँधेरा छाया हुआ है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि खाद्यान्न सुरक्षा, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा और आजीविका के सार्विक अधिकार को लेकर जन-सत्याग्रह और नागरिक अवज्ञा आन्दोलन जैसे आन्दोलन के रूपों को पुनः जन-सामान्य के बीच लोकप्रिय बनाया जा सकता है। नवउदारवाद की नीतियाँ आम लोगों के जीवन को जिस तरह दूभर बना रही हैं और धनी-गरीब की बढ़ती खाई आज आँखों में जितनी चुभ रही है, उससे सामाजिक विस्फोट की एक नयी ज़मीन तैयार हो रही है। यह समय है जब जनवादी अधिकार के आन्दोलन को एक व्यापक जनान्दोलन की शक्ल दी जाये और जनवाद की इस लड़ाई को नये सिरे से संगठित करने में भी मज़दूर वर्ग की अग्रणी भूमिका बनायी जानी चाहिए।

जनवादी अधिकारों के संघर्ष में यहाँ तक शिक्षित होने के बाद मज़दूर वर्ग नयी संविधान सभा बुलाने, जन-प्रतिनिधित्व की सस्ती, पारदर्शी एवं जवाबदेही भरी व्यवस्था बनाने, औपनिवेशिक क़ानून-व्यवस्था, पुलिस और नौकरशाही के तंत्र को बदलने तथा नौकरशाही को हर स्तर पर जन-निगरानी के दायरे में लाने जैसी और उन्नत जनवादी माँगों पर भी लड़ने के लिए स्वयं तैयार होगा और जनता के अन्य वर्गों को भी साथ लेगा। तब वह धार्मिक कट्टरपंथियों के विरुद्ध जुझारू मोर्चेबन्दी के लिए भी तैयार हो सकेगा तथा अन्धराष्ट्रवादी प्रचार के प्रभावों से मुक्त होकर राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार का भी मुखर समर्थन करेगा।

यह कोई मंसूबावादी सोच नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक योजना है जो मज़दूर वर्ग की भी ज़रूरत है और जनवादी अधिकार आन्दोलन की भी ज़रूरत है। लेनिन के ही विचार को दुहराते हुए कहा जा सकता है कि जो मज़दूर वर्ग जनवाद की लड़ाई लड़ने के लिए शिक्षित नहीं है, वह पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों और रा. जनीतिक तंत्र को क्रान्तिकारी ढंग से बदलने के काम को भी अंजाम नहीं दे सकता। इसी बात को दूसरे कोण से यूँ भी कहा जा सकता है कि जनवादी अधिकार आन्दोलन को व्यापक जनान्दोलन बनाने के लिए शहरों और गाँवों के मज़दूर वर्ग के जनवादी अधिकारों की माँगों को मुद्दा बनाने की और अपनी इन माँगों को लेकर संघर्ष करने के लिए ख़ुद मज़दूर वर्ग को जागृत, गोलबन्द, और संगठित करने की ज़रूरत है।

– प्रसेन

(यह आलेख 'अरविन्द स्मृति न्यास' की ओर से 'भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ' विषय पर 22-24 जुलाई 2011 को लखनऊ में आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत किया गया था।)

चिनगारी से लगेगी आग!

रूस में मज़दूरों के क्रान्तिकारी अख़बार 'ईस्क्रा' की शुरुआत की रोमांचक कहानी

साइबेरिया की खानों में
मान औ' धैर्य की ज़रूरत अपार,
व्यर्थ न जायेंगे दुखद संघर्ष
और आपके उदात्त विचार।

ये पंक्तियाँ कवि पुश्किन ने नेरचिन्स्क, साइबेरिया, में निर्वासित और खानों में काम करने को मजबूर दिसम्बरवादियों को लिखी थीं। इसके उत्तर में कवि-दिसम्बरवादी ओदोयेव्स्की ने उन्हें लिखा :

न होगा व्यर्थ हमारा संघर्ष अथक,
चिनगारी से भड़केंगी ज्वालाएँ!

व्लादीमिर इल्यीच (लेनिन) ने अख़बार का नाम 'ईस्क्रा' (चिनगारी) ही रखने का फ़ैसला किया।

शूशेन्स्कोये में रहते हुए ही उन्होंने उसकी पूरी योजना तैयार कर ली थी। अब उसे कार्यरूप देना था। साइबेरिया से लौटकर व्लादीमिर इल्यीच प्स्कोव में रहने लगे। अकेले ही। नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना की निर्वासन अवधि अभी ख़त्म नहीं हुई थी, इसलिए वह बाक़ी समय के लिए उफ़ा में ही रुक गयीं। व्लादीमिर इल्यीच को प्स्कोव में रहने की इजाज़त थी। वहाँ उन्होंने 'ईस्क्रा' निकालने के लिए तैयारियाँ शुरू कीं। वह विभिन्न शहरों की यात्रा करते। 'ईस्क्रा' में काम करने के लिए साथियों को ढूँढ़ते। अख़बार के लिए लेख लिखने वालों को ढूँढ़ना था। फिर ऐसे आदमियों की तलाश भी ज़रूरी थी, जो अख़बार का गुप्त रूप से वितरण करते। 'ईस्क्रा' को आम तरीक़े से दूकानों और स्टॉलों पर बेचा नहीं जा सकता था। और अगर कोई ऐसा करता, तो उसे तुरन्त जेल हो सकती थी। अख़बार निक. ालने के लिए पैसों की भी ज़रूरत थी।

ज़मीन-आसमान एक करके चार महीने में व्लादीमिर इल्यीच ने 'ईस्क्रा' की तैयारी पूरी कर ही ली।

पर एक सवाल अभी बाक़ी था। अख़बार को छापा कहाँ जाये? रूस में रहते हुए भला कोई ज़ार के ख़िलाफ़, ज़मींदारों और उद्योगपतियों के ख़िलाफ़, पुलिस के अफ़सरों के ख़िलाफ़ अख़बार छापने के लिए तैयार होता?

व्लादीमिर इल्यीच को इस बारे में भी काफ़ी सोचना पड़ा। उन्होंने साथियों से परामर्श किया। अन्त में यह तय हुआ कि उसे विदेश में छापा जाये। बेशक वहाँ भी ऐसा अख़बार पूर्णतया गुप्त रूप से ही निकाला जा सकता था। पर वहाँ रूसी पुलिस के भेदिये इतने अधिक नहीं थे।

व्लादीमिर इल्यीच ने जैसे-तैसे डॉक्टरी सर्टिफ़िकेट का इन्तज़ाम किया और इलाज के बहाने विदेश रवाना हो गये। इससे पहले वह नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना से भी मिल आये, जिनका निर्वासन नौ महीने बाद ख़त्म होना था। अब वह वतन से दूर जा रहे थे। क्या बहुत अरसे के लिए? जैसे कि बाद में पता चला, बहुत अरसे के लिए।

...तंग सड़कों, नुकीली छतों वाले मकानों और प्रोटेस्टेण्ट गिरजों वाले जर्मन शहर लाइप्ज़िग में बहुत अधिक कल-कारख़ाने और उनसे भी अधिक छापेख़ाने और हर तरह की किताबों की दूकानें थीं। वहाँ कोई पैंतीस साल की उम्र का गेर्मन राऊ नाम का एक जर्मन रहता था। शहर के बाहर एक छोटे-से गाँव में उसका छापाख़ाना था। उसमें मशीन के नाम पर सिर्फ़ एक ही – हालाँकि काफ़ी बड़ी – छपाई मशीन थी और वह भी बहुत पुरानी। उस पर मज़दूरों का खेलकूद अख़बार, तरह-तरह के पोस्टर और पैम्फ़लेट छापे जाते थे।

गेर्मन राऊ सामाजिक-जनवादी था। एक दिन लाइप्ज़िग के सामाजिक-जनवादियों ने उसे बताया कि रूस से एक मार्क्सवादी आया है। रूसी मार्क्सवादी अपना क्रान्तिकारी अख़बार निकालना चाहते हैं और यह तय किया गया है कि उसका पहला अंक लाइप्ज़िग में छपे।

"रूसी साथियों की मदद करनी चाहिए," लाइप्ज़िग के सामाजिक-जनवादियों ने गेर्मन राऊ से कहा।

लाइप्ज़िग आने वाला रूसी मार्क्सवादी और कोई नहीं, व्लादीमिर इल्यीच ही थे। उन्होंने शहर के छोर पर एक कमरा किराये पर लिया। वह हमेशा मुँह अँधेरे ही उठ जाते थे, जब हर कहीं निस्तब्धता होती थी। यहाँ तक कि फ़ैक्टरियों के भोंपू भी नहीं बजते होते थे। कमरा बहुत ठण्डा था। दिसम्बर का महीना चल रहा था।

व्लादीमिर इल्यीच ने स्पिरिट के चूल्हे पर पानी उबाला, टिन के मग में चाय बनाकर गरम-गरम पी और हमेशा की तरह घर से निकल पड़े। जाना दूर था, गेर्मन राऊ के छापेख़ाने तक। कोई पाँच-छः किलोमीटर का रास्ता होगा। घोड़ाट्राम वहाँ नहीं जाती थी, इसलिए पैदल ही जाना होता था। रास्ते में पैदल या साइकिलों पर सवार मज़दूर और बाज़ार जाने वाले किसानों के ठेले मिलते थे। शहर की सीमा आ गयी। आगे बर्फ़ से ढँके खेत थे। दूर, क्षितिज के पास जंगल का काला साया दिखायी दे रहा था। शहर के छोर पर बस्तियों की बत्तियाँ जल रही थीं। गेर्मन राऊ के छापेख़ाने की खिड़की से लालटेन का उजाला दिखायी दे रहा था।

सारा छापाख़ाना एक बड़े-से कमरे में समाया हुआ था, जिसके आधे हिस्से में पुरानी छपाई मशीन खड़ी थी। कमरे में दो कम्पोज़िंग बॉक्स भी थे। लोहे की अँगीठी में लकड़ियाँ जलते हुए चटक रही थीं। लपटें कँपकँपाती थीं, तो उनके साथ ही दीवारों पर पड़ने वाले साये भी काँप जाते थे।

"आज महत्त्वपूर्ण दिन है," गेर्मन राऊ ने जर्मन में व्लादीमिर इल्यीच से कहा।

व्लादीमिर इल्यीच ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की। सचमुच आज महत्त्वपूर्ण दिन था। अब तक तो तैयारियाँ ही होती रही थीं, पर आज...

कम्पोज़िटर ने भारी ब्लॉक उठाकर मशीन पर चढ़ाया। गेर्मन राऊ ने हत्था घुमाया। मशीन घड़घड़ायी। सिलैण्डर घूमने लगा और अख़बार का पन्ना मशीन से बाहर निकला। इस तरह 'ईस्क्रा' का पहला अंक छपकर तैयार हुआ।

व्लादीमिर इल्यीच ने एक अंक उठाया। इस घड़ी का वह कब से और कितनी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे थे!

"अब हमारे पास अपना, मज़दूरों का क्रान्तिकारी अख़बार है! उड़ चलो, हमारे अख़बार, वतन की तरफ़! करो पैदा जागृति और उभारो क्रान्ति के लिए!"

व्लादीमिर इल्यीच ने सबको सुनाते हुए अख़बार का नाम पढ़ा : **"ईस्क्रा"।** दायीं तरफ़ ऊपर कोने में छपा था :

"चिनगारी से भड़केंगी ज्वालाएँ!"

लेनिन

मुसाफ़िर गाड़ी केनिग्सबर्ग जा रही थी। तीसरे दर्जे के डिब्बे में एक कोने में खिड़की के पास एक नौजवान बैठा था। वह म्यूनिख़ में सवार हुआ था और तब से सारे रास्तेभर ऊँघता रहा था। उसके पैरों के पास एक काफ़ी बड़ा सूटकेस रखा था।

गाड़ी केनिग्सबर्ग पहुँच गयी। यह पत्थर के क़िले, गिरजाघरों और लाल खपरैल की छतों वाला पुराना शहर था। बाल्टिक सागर के तट पर होने के कारण यहाँ बन्दरगाह भी था, जिसमें दसियों जहाज़ खड़े थे। उनमें से एक का नाम था 'सेण्ट मार्गरीता'। म्यूनिख़ से आये जर्मन ने इधर-उधर ताका-झाँका और फिर बन्दरगाह की ओर न जाकर पास ही के एक बीयरख़ाने में घुस गया। बीयरख़ाने में भीड़ बहुत थी। चारों तरफ़ तम्बाकू का भूरा, कड़वा धुआँ छाया हुआ था। जर्मन एक ख़ाली जगह पर बैठ गया और सूटकेस को उसने मेज़ के नीचे खिसका दिया। फिर बैरे से सासेज मँगाकर बीयर के साथ धीरे-धीरे खाने लगा। इतने धीरे-धीरे कि मानो उसके पास फ़ालतू वक़्त बहुत हो। या हो सकता है कि वह किसी का इन्तज़ार कर रहा था? हाँ, उसे सचमुच 'सेण्ट मार्गरीता' के जहाज़ी का इन्तज़ार था। उससे मिलने के लिए ही वह म्यूनिख़ से आया था, हालाँकि उसे पहले कभी नहीं देखा था। जब भी कोई नया आदमी बीयरख़ाने में आता, म्यूनिख़ से आया हुआ जर्मन दायें हाथ से बालों को दायें कान की तरफ़ सहलाते हुए टकटकी लगाकर उसे देखता। इस तरफ़ किसी का ध्यान भी नहीं जा सकता था, क्योंकि बालों को सहलाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। मगर यह एक इशारा था।

आख़िरकार जहाज़ी आ ही गया। समुद्री हवा और धूप से उसका चेहरा ताँबई हो गया था। दरवाज़े पर खड़े-खड़े उसने सभी लोगों पर नज़र डाली और बालों को सहलाते हुए आदमी को देखकर सीधे उसकी तरफ़ बढ़ चला। मेज़ के पास बैठकर उसने पैर से सूटकेस को टटोला और बोला :

"उफ़्फ़, कितनी भयंकर हवा है!"

"अगर अपने रास्ते की तरफ़ है, तो कोई बात नहीं," म्यूनिख़ से आये जर्मन ने जवाब दिया।

"ठीक ही पहचाना, भैया, अपने ही रास्ते की तरफ़ है।"

यह पहचान-वाक्य था। तुरन्त ही दोनों के बीच आत्मीयता पैदा हो गयी। दोनों का एक ही ध्येय था, जिसकी ख़ातिर वे यहाँ बीयरख़ाने में इकट्ठा हुए थे।

बातचीत जल्दी ही ख़त्म हो गयी और दोनों बीयरख़ाने से बाहर निकल आये। अब सूटकेस जर्मन के हाथ में नहीं, बल्कि जहाज़ी के हाथ में था। किसी ने इस बदलाव पर ध्यान नहीं दिया। आख़िर किसी को इससे मतलब भी क्या था? दो साथी जा रहे हैं, बातें कर रहे हैं। चौराहे पर दोनों अलग हो गये। म्यूनिख़ से आया जर्मन स्टेशन की ओर चल पड़ा और सूटकेस 'सेण्ट मार्गरीता' पर बाल्टिक सागर से होते हुए स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम की ओर।

रात में हवा बहुत तेज़ हो गयी। लहरें आसमान छूने लगीं। तूफ़ान 'सेण्ट मार्गरीता' को कभी इधर तो कभी उधर फेंकने लगा। अँधेरा ऐसा था कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था।

जहाज़ छः घण्टे देर से स्टाकहोम पहुँचा। फ़िनिश जहाज़ 'सुओमी' शायद कभी का हेल्सिंगफ़ोर्स के लिए रवाना हो चुका होगा।

"समय पर नहीं पहुँच पाया", जहाज़ी को अफ़सोस हो रहा था।

अचानक उसे 'सुओमी' दिखायी दिया। वह स्टाकहोम के बन्दरगाह में खड़ा भाप छोड़ रहा था। शायद तूफ़ान की वजह से उसे भी रुक जाना पड़ा था और अब लंगर उठाने की तैयारियाँ कर रहा था।

"आहिस्ता से आगे!" कप्तान ने आदेश दिया। चक्कों के नीचे पानी खौलने लगा। जहाज़ चल पड़ा।

"वाइस-कप्तान साहब!" भारी सूटकेस को खींचते हुए जहाज़ी चिल्लाया, "केनिग्सबर्ग से आपकी चाची ने पार्सल भेजा है!"

दौड़ने की वजह से जहाज़ी हाँफ रहा था। सूटकेस बहुत भारी था। उसे लगा कि उसकी सारी कोशिश बेकार हो गयी है, क्योंकि 'सुओमी' तट से हट चुका था।

लेकिन नहीं, कोशिश बेकार नहीं गयी। चमत्कार-सा हुआ। कप्तान ने उसका चिल्लाना सुन लिया और...

"आहिस्ता से पीछे!" 'सुओमी' पर आदेश सुनायी दिया। "स्टाप!"

"वाइस-कप्तान साहब!" जहाज़ी पूरे ज़ोर से चिल्लाया, "आपकी चाची ने गरम स्वेटर भेजे हैं और नया सूट भी।"

घाट पर खड़े सभी लोग ठहाका लगाकर हँस पड़े। न जाने क्यों, सभी ख़ुश थे कि 'सुओमी' पार्सल लेने के लिए वापस लौट आया है। वाइस-कप्तान ने सूटकेस लिया, हाथ हिलाकर जहाज़ी को धन्यवाद दिया और "पार्सल" को अपने केबिन में छिपा लिया

सूटकेस की यात्रा जारी रही।

जब जहाज़ हेल्सिंगफ़ोर्स पहुँचा, तो मूसलाधार बारिश हो रही थी। वाइस-कप्तान ने बरसाती पहनी और सूटकेस उठाकर तेज़ी से घोड़ाट्राम के स्टाप की ओर बढ़ चला। पानी इतना अधिक बरस रहा था कि जैसे बाढ़ ही आ गयी हो। ओह, कहीं बक्से में पानी न चला जाये! वाइस-कप्तान ने इधर-उधर झाँका, पर वह मज़दूर कहीं नहीं दिखायी दिया, जिससे उसे स्टाप पर मिलना था। जहाज़ कुछ घण्टे देर से पहुँचा था। ऊपर से यह मूसलाधार बारिश! सड़कें सुनसान थीं। कहीं वह पीटर्सबर्ग का मज़दूर इन्तज़ार करते-करते ऊब न गया हो! क्या किया जाये? तभी घोड़ाट्राम आती दिखायी दी.. .पर वह मज़दूर उसमें भी नहीं था। अचानक वाइस-कप्तान ने देखा कि सामने के घर के फाटक से एक आदमी बाहर निकल इधर-उधर देखते हुए उसकी ओर आ रहा है। यही वह मज़दूर था, जिससे उसे मिलना था।

"कैसी बदक़िस्मती है! खड़े-खड़े अकड़ गया हूँ," मज़दूर बड़बड़ाया।

"तूफ़ान के कारण देर हो गयी। कब

(पेज 13 पर जारी)

(पेज 14 से आगे)

जायेंगे?"

"आज।"

"ठीक है। मैं अभी तार से सूचित कर दूँगा।"

मज़दूर ने सहमति में सिर हिलाया और सूटकेस उठाकर घोड़ाट्राम पर चढ़ गया। कुछ घण्टे बाद सूटकेस रेलगाड़ी से पीटर्सबर्ग जा रहा था।

गाड़ी ख़ाली पड़े वसन्तकालीन खेतों, बारिश से भीगे गाँवों और निर्जन ग्रामीण बंगलों की बग़ल से गुज़र रही थी। पीटर्सबर्ग का मज़दूर इन जगहों को भली-भाँति जानता था, इसलिए चुपचाप बैठा अख़बार पढ़ रहा था और बेलोओस्त्रोव स्टेशन की प्रतीक्षा कर रहा था।

बेलोओस्त्रोव से रूस की सीमा शुरू होती थी। वहाँ हमेशा कस्टम चेकिंग होती थी।

कस्टम का आदमी कम्पार्टमेण्ट में आया।

"कृपया अपने सूटकेस दिखाइये।"

पीटर्सबर्ग के मज़दूर ने बिना कोई जल्दबाज़ी दिखाये अपना सूटकेस खोला। एक जोड़ी कपड़े, पुराना चारख़ानेदार कम्बल और मिठाई का डिब्बा। बस। कस्टम वाले ने सूटकेस के किनारे ठकठकाये, पर सन्देहजनक कुछ भी न मिला।

उसी दिन मज़दूर पीटर्सबर्ग में था और वसील्येव्स्की द्वीप पर एक पत्थर के मकान की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। दूसरी मंज़िल पर दरवाज़े पर ताँबे की प्लेट लगी थी : "दाँतों का डॉक्टर"।

आगन्तुक ने घण्टी बजायी। दो लम्बी और एक छोटी। इसका मतलब था कि डरने की कोई बात नहीं, अपना ही आदमी आया है।

दाँतों के डॉक्टर ने दरवाज़ा खोला।

"आइये, आपका ही इन्तज़ार था।"

क्रान्तिकारी गुप्त मुलाक़ातों के लिए यहीं एकत्र हुआ करते थे। डॉक्टर के कमरे में एक लड़की मज़दूर का इन्तज़ार कर रही थी।

"लाइये," उसने कहा और मज़दूर के हाथ से सूटकेस ले लिया। बेचारे ने रास्ते में क्या-क्या नहीं झेला था! तूफ़ान, बारिश, कस्टम चेकिंग।

लड़की ने सूटकेस से चारख़ानेदार कम्बल और दूसरी चीज़ें निकालीं। लेकिन यह क्या? आगन्तुक ने सफ़ाई से सूटकेस का तला दबाया और वह ढक्कन की तरह खुल गया। सूटकेस में दो तले थे। निचले तले में कसकर तह किये हुए अख़बार रखे हुए थे। लड़की ने एक अख़बार उठाया। 'ईस्क्रा'!

अच्छा, तो यह है वह चीज़, जिसे केनिग्सबर्ग, स्टाकहोम, हेल्सिंगफ़ोर्स से होते हुए इतनी मेहनत और इतने गुप्त रूप से म्यूनिख़ से पीटर्सबर्ग पहुँचाया गया है!

लड़की सूटकेस से 'ईस्क्रा' निकालकर अपने टोप के डिब्बे में रखने लगी। जब सब अख़बार आ गये, तो उसने फ़ीते से डिब्बे को बाँध दिया और पीटर्सबर्ग के छोर पर सक्रिय मज़दूर मण्डलियों को बाँटने चल पड़ी। वह 'ईस्क्रा' की एजेण्ट थी। 'ईस्क्रा' के गुप्त एजेण्ट रूस के सभी बड़े शहरों में थे।

'ईस्क्रा' को गुप्त रूप से जहाज़ों से, रेलगाड़ियों से लाया जाता, सीमा के इस पार पहुँचाया जाता। 'ईस्क्रा' मज़दूरों और किसानों की आँखें खोलता, उन्हें दिखाता कि उनका वास्तविक जीवन क्या है।

'ईस्क्रा' उन्हें सिखाता : "ज़ारशाही के ख़िलाफ़ लड़ो! मालिकों के ख़िलाफ़ लड़ो!"

'ईस्क्रा' उन्हें पार्टी का निर्माण करने के लिए, क्रान्ति के लिए ललकारता। शीघ्र ही रूस में 'ईस्क्रा' की प्रेरणा से एक शक्तिशाली मज़दूर आन्दोलन शुरू हो गया। इस विराट आन्दोलन के नेता, मार्गदर्शक और 'ईस्क्रा' के मुख्य सम्पादक व्लादीमिर इल्यीच थे।

व्लादीमिर इल्यीच को रूस से मज़दूरों और 'ईस्क्रा' के एजेण्टों से बड़ी संख्या में पत्र, लेख, आदि मिलते थे और लगभग सब कूट भाषा में लिखे होते थे। वह उन्हें 'ईस्क्रा' में छापते, मज़दूरों के पत्रों के जवाब देते, 'ईस्क्रा' के लिए लेख तैयार करते और साथ ही राजनीति और क्रान्तिकारी संघर्ष के बारे में किताबें लिखते।

दिसम्बर, 1901 से व्लादीमिर इल्यीच अपने लेखों और किताबों को **लेनिन** नाम से छापने लगे।

यह महान नाम था, एक ऐसा नाम, जिससे शीघ्र ही सारी दुनिया परिचित होने वाली थी।

(मरीया प्रिलेज़ायेवा की पुस्तक **'लेनिन कथा'** से)

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

(पेज 11 से आगे)

क़ानून-व्यवस्था पर विचार-विमर्श के लिए राजा को शिलांग बुलाया और वहाँ कुटिलता से उससे भारत में विलय के समझौते पर हस्ताक्षर करा लिया। भारत सरकार ने इतनी भी ज़हमत उठाना ज़रूरी नहीं समझा कि इस समझौते की अभिपुष्टि नवनिर्वाचित मणिपुर विधानसभा द्वारा करा ली जाये। उल्टे विधानसभा को भंग कर दिया गया और मणिपुर को चीफ़ कमिश्नर के मातहत कर दिया गया और प्रलोभन और दमन की नीति अपनाकर प्रतिरोध को दबाने का सिलसिला शुरू हो गया और इसी के समान्तर सशस्त्र संघर्षों का भी सिलसिला शुरू हो गया। आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर्स एक्ट की आड़ में भारतीय सेना द्वारा की गयी बर्बरता ने प्रतिरोध को और धार दी। 2004 में भारतीय सैनिकों द्वारा एक मणिपुरी महिला मनोरमा के बलात्कार और हत्या के विरोध में वहाँ की महिलाओं ने निर्वस्त्र होकर सेना मुख्यालय के सामने विरोध प्रदर्शन किया जो किसी भी लोकतान्त्रिक राज्य के लिए एक शर्मनाक घटना होती। परन्तु भारतीय राज्य शर्मसार नहीं हुआ और उत्तर-पूर्व में आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर्स एक्ट आज़ तक लागू है।

नगा राष्ट्रवाद का इतिहास इससे भी पुराना है। बीसवीं सदी की शुरुआत में भारत-बर्मा सीमा पर स्थित नगा पहाड़ियों के निवासी नगा नेशनल कौंसिल (एन.एन.सी.) के बैनर तले एकजुट होकर एक साझा मातृभूमि और स्वशासन की आकांक्षा प्रकट करने लगे थे। गाँधी ने एकाधिक बार नगा लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार दिलाने का वायदा भी किया था। ब्रिटिश प्रशासन और एन.एन.सी. के बीच हैदरी समझौते के तहत नगालैण्ड को दस वर्षों के लिए संरक्षित दर्जा प्रदान किया गया था और उसके बाद नगाओं को तय करना था कि वे संघ में शामिल हों अथवा नहीं। लेकिन अंग्रेज़ों के जाने के बाद भारतीय राज्य ने एकतरफ़ा तरीक़े से नगा भूभाग को भारतीय गणराज्य का हिस्सा घोषित कर दिया। बदले में एन.एन.सी. ने नगालैण्ड की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। नगा नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया और तब से ही नगालैण्ड में एक लम्बे सशस्त्र संघर्ष की शुरुआत हुई। इसी संघर्ष का सामना करने के लिए 1958 में 'आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पावर्स एक्ट' बना जो आज तक समूचे उत्तर-पूर्व में लागू है। 1975 में एन.एन.सी. के शीर्ष नेतृत्व ने भारत सरकार के साथ वार्ता करके शिलांग समझौता किया और भारतीय गणराज्य में शामिल होना स्वीकार किया। जिन नगा नेताओं ने इस समझौते को स्वीकार नहीं किया उन्होंने 'नेशनल सोशलिस्ट कौंसिल ऑफ नगालैण्ड' (एन.एस.सी.एन.) का गठन करके संघर्ष जारी रखा। अब यह संगठन मुइवा और खापलांग के दो गुटों में विभाजित है, जिनका आधार नगा जनजातीय समूह की अलग-अलग उपजातियों में है। पिछलें कुछ वर्षों से इन दोनों संगठनों के साथ भारत सरकार का युद्धविराम और वार्ताओं का सिलसिला जारी है।

मिज़ो सशस्त्र विद्रोह की कहानी साठ के दशक से शुरू होती है। साठ के दशक के प्रारम्भ में असम की लुशाई पहाड़ियों में भीषण अकाल पड़ा। एक स्थानीय राहत टीम बनी जिसने भारत सरकार से राहत की गुहार लगाई, पर भारत सरकार ने राहत की रस्म-अदायगी से अधिक कुछ भी नहीं किया। इसके बाद राहत टीम ने स्वयं को मिज़ो नेशनल फ्रण्ट (एम.एन.एफ.) के रूप में संगठित किया और 'भारतीय उपनिवेशवाद से मिज़ोरम की मुक्ति' के लिए सशस्त्र संघर्ष का आह्वान किया। फरवरी 1966 में सशस्त्र दस्तों ने ऐज़ल शहर क़ब्ज़ा कर लिया। शहर को फिर से क़ब्ज़ा करने में भारतीय सेना ने पहली बार अपनी नागरिक आबादी पर धुआँधार बमबारी की। हज़ारों परिवारों को उनके घरों से निकाल कर सड़कों के किनारे नये गाँव बसाये गये ताकि सेना उन्हें आसानी से नियन्त्रित कर सके। इससे काफ़ी हद तक मिज़ो समाज की संरचना तबाह हो गई। 1986 में एम.एन.एफ. और भारत सरकार के बीच समझौता हुआ जिसके बाद एम.एन.एफ. हिंसा छोड़कर भारतीय संविधान के अन्तर्गत काम करने पर राज़ी हो गया। पर इससे मिज़ोरम के नृजातीय समूहों का अलगाव ज़रा भी कम नहीं हुआ। आज भी वहाँ अलग-अलग नृजातीय समूहों के अपने-अपने सशस्त्र विद्रोही दस्ते हैं।

राज्यों के पुनर्गठन की प्रक्रिया में नगालैण्ड को राज्य का दर्ज़ा 1963 में मिला। पर नगा ग्रुपों के कई राजनीतिक-प्रशासकीय इकाइयों में बँटे होने के कारण उनका असन्तोष बना रहा। 1972 में असम से खासी, गारो और जयन्तिया को मिलाकर अलग मेघालय राज्य बना तथा त्रिपुरा और मणिपुर को पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया। मिज़ो पहाड़ियों (अब मिज़ोरम) और 'नार्थ-ईस्टर्न फ्रण्टियर एजेन्सी' (अब अरुणाचल प्रदेश) को असम से अलग केन्द्र शासित राज्य का दर्जा दिया गया फिर 1987 में इन्हें पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया। असम के बाल्कनीकरण की इस प्रक्रिया ने केन्द्र और शेष भारत से उत्तर-पूर्व के पर्वतीय अंचलों के अलगाव और स्वतन्त्रता की आकांक्षा को तो समाप्त नहीं किया, उल्टे अन्य स्थानीय नृजातीय समूहों में भी स्वशासन या स्वतन्त्रता की आकांक्षा पैदा हुई और भूभागों पर दावों को लेकर आपस में उग्र टकरावों की शुरुआत हो गई। मिसाल के लिए बोडो आन्दोलन और गोरखा आन्दोलन। 2005 में बोडो जनजाति के उग्र आन्दोलन को नियन्त्रित करने के लिए असम के बोडो बहुल्य चार राज्यों को एक स्वायत्तशासी बोडोलैण्ड क्षेत्र का दर्जा दिया गया। सांस्कृतिक अलगाव और आर्थिक शोषण के अतिरिक्त देश के भीतर से होने वाले आप्रवासन और बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, तिब्बत और बर्मा से होने वाले आप्रवासन के चलते पैदा हुए जनसांख्यिकीय असन्तुलन ने भी इस भूभाग की जनता में भय और असुरक्षा का मनोविज्ञान पैदा किया जिसकी परिणति अनेक हिंसात्मक घटनाओं में हुई। अभी पिछले वर्ष बोडोलैण्ड में हुई हिंसा इसी परिघटना की एक मिसाल है जिसमें असम की विभिन्न जनजातियाँ अपनी दरिद्रता का कारण आप्रवासियों के रूप में देखती हैं।

इसी कड़ी में सिक्किम के इतिहास पर नज़र दौड़ाना भी मौज़ूँ होगा। सिक्किम का दर्जा 1947 से भारत के संरक्षित राज्य (प्रोटेक्टोरेट) का था। वह भारतीय संघ का हिस्सा नहीं था। 1975 में बिना सिक्किम की जनता की राय लिये भारतीय संविधान में मौजूद प्रावधान के तहत उसे भारत में मिला लिया गया और पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया। इसके बाद सिक्किम भी उत्तर-पूर्व का हिस्सा माना जाने लगा।

आज़ादी के बाद शुरुआती दशकों में तो भारत सरकार ने उत्तर-पूर्व के महत्व को केवल रणनीतिक दृष्टि से ही देखा था। परन्तु पूँजीवादी विकास के साथ ही प्राकृतिक सम्पदा और सस्ती श्रम शक्ति के दोहन की भी शुरुआत हुई। साथ ही यह क्षेत्र विकास की मुख्य धारा से कटा ही रहा। असम दुनिया का सबसे बड़ा चाय-उत्पादक भूभाग है। चाय बागानों में देशी-विदेशी पूँजी लगी हुई है, पर इससे आम आबादी की ग़रीबी पर कोई असर नहीं पड़ा है। देश के कुल पेट्रोलियम उत्पादन का 64 प्रतिशत अकेले असम करता है, पर उसका शोधन अन्य राज्यों में होने की वजह से उसे राजस्व का कोई लाभ नहीं मिल पाता। चाय और तेल के अतिरिक्त पूरा उत्तर-पूर्व चूना-पत्थर, कोयला, बाँस सहित प्रचुर खनिज और अन्य प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर है जिसका सार्वजनिक और निजी पूँजी द्वारा दोहन लगातार बढ़ता जा रहा है। लेकिन उत्तर-पूर्व के राज्य आर्थिक दृष्टि से मध्य और उत्तर भारत के ग़रीब राज्यों के निकट हैं जबकि शिक्षा के स्तर और अन्य मानव-विकास सूचकांकों के हिसाब से विकसित दक्षिण भारतीय राज्यों के निकट हैं।

भारत की शक्तिशाली केन्द्रीय राज्यसत्ता से टकराकर उत्तर-पूर्व की छोटी-छोटी राज्य राष्ट्रीयताएँ भले ही अपनी मुक्ति न प्राप्त कर पायें, परन्तु वे हारेंगी भी नहीं। उनका संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक उनके अलगाव और उपेक्षा की स्थिति बनी रहेगी। किसी काल्पनिक एकाश्मी राष्ट्रवाद में उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का विलयन पूँजीवाद की चौहद्दी में सम्भव भी नहीं लगता। इसलिए उनके संघर्ष भी विसर्जित नहीं होंगे। नेतृत्व की कोई एक धारा जब समर्पण करेगी तो दूसरी धारा उभरकर सामने आयेगी और संघर्ष को ज़ारी रखेगी। इस समस्या का समाधान केवल और केवल एक समाजवादी राज्य के तहत ही सम्भव है जो सही मायने में विभिन्न राष्ट्रों और राष्ट्रीयताओं के आत्म-निर्णय के अधिकार और अलग होने के अधिकार के आधार पर एक संघात्मक ढाँचा विकसित करेगा।

(अगले अंक में - भारतीय राज्य द्वारा कश्मीर की जनता से दग़ाबाजी का इतिहास)

RNI No. UPHIN/2010/36551

डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

एक हज़ार कारण हैं कि हम विद्रोह करें, और बस एक ही काफी है कि अब और प्रतीक्षा न करें!

भारत में कुपोषित बच्चों की दर दुनिया में सबसे ग़रीब माने जाने वाले उप-सहारा अफ्रीका के देशों से भी अधिक है। एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (आईसीडीएस) की हाल की रिपोर्ट के अनुसार पोषण के बारे मे सरकारी विभागों के आँकड़ों और ज़मीनी सच्चाइयों में बहुत अधिक अन्तर है। देश की राजधानी और सबसे अमीर राज्यों में से एक, दिल्ली में 47 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं।

एक सरकारी सर्वेक्षण ने बताया है कि ग्रामीण इलाकों में रहने वाले ग़रीब लोग केवल 17 रुपये प्रतिदिन पर गुज़ारा करते हैं जबकि शहरों और कस्बों में रहने वाले रोज़ाना 23 रुपये पर जीते हैं। 2011-12 (जून-जुलाई) के लिए राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे (एनएसएस) के आँकड़ों के मुताबिक सबसे नीचे की 5 प्रतिशत आबादी की औसत मासिक आय ग्रामीण क्षेत्रों में रु. 521.44 है और शहरी क्षेत्रों में रु. 700.50 है।

एक सरकारी आँकड़े के अनुसार, देश की 75 फ़ीसदी माँओं को पोषणयुक्त भोजन नहीं मिलता। विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ, यू. एन.एफ़.पी.ए. और विश्व बैंक द्वारा तैयार की गयी 'मैटर्नल मॉर्टेलिटी रिपोर्ट' (2007) के अनुसार, पूरी दुनिया में गर्भावस्था या प्रसव के दौरान 5.36 लाख स्त्रियाँ मर जाती हैं। इनमें से 1.17 लाख मौतें सिर्फ़ भारत में होती हैं। भारत में प्रसव के दौरान 1 लाख में से 450 स्त्रियों की मौत हो जाती है। गर्भावस्था और प्रसव के दौरान मृत्यु के 47 फ़ीसदी मामलों में कारण ख़ून की कमी और अत्यधिक रक्तस्राव होता है। रिपोर्ट के अनुसार, भारत सहित सभी विकासशील देशों में गर्भवती और सद्य: प्रसूता स्त्रियों के मामले में 99 फ़ीसदी मौतें ग़रीबी, भूख और बीमारी के चलते होती हैं।

विकास के तमाम दावों के बावजूद देश में बेरोज़गारों की संख्या बढ़ती जा रही है। 2009-10 में 36.5 प्रतिशत लोगों के पास वर्ष के ज़्यादातर समय रोज़गार रहता था, लेकिन 2011-12 तक ऐसे कामगारों की संख्या घटकर 35.4 प्रतिशत रह गयी। ग्रामीण क्षेत्रों में इन दो वर्षों के दौरान 90 लाख से ज़्यादा औरतों का काम छूट गया।

भारत में औसत आयु चीन के मुक़ाबले 7 वर्ष और श्रीलंका के मुक़ाबले 11 वर्ष कम है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्युदर चीन के मुक़ाबले तीन गुना, श्रीलंका के मुक़ाबले लगभग 6 गुना और यहाँ तक कि बांग्लादेश और नेपाल से भी ज़्यादा है। भारतीय बच्चों में से क़रीबन आधों का वज़न ज़रूरत से कम है और वे कुपोषण से ग्रस्त हैं। क़रीब 60 फ़ीसदी बच्चे ख़ून की कमी से ग्रस्त हैं और 74 फ़ीसदी नवजातों में ख़ून की कमी होती है। प्रतिदिन लगभग 9 हज़ार भारतीय बच्चे भूख, कुपोषण और कुपोषणजनित बीमारियों से मरते हैं। 5 साल से कम उम्र के बच्चों की मौत के 50 फ़ीसदी मामलों का कारण कुपोषण होता है। 5 वर्ष से कम आयु के 5 करोड़ भारतीय बच्चे गम्भीर कुपोषण के शिकार हैं। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, 63 फ़ीसदी भारतीय बच्चे प्राय: भूखे सोते हैं और 60 फ़ीसदी कुपोषणग्रस्त होते हैं। 23 फ़ीसदी बच्चे जन्म से कमज़ोर और बीमार होते हैं। एक हज़ार नवजात शिशुओं में से 60 एक वर्ष के भीतर मर जाते हैं। लगभग दस करोड़ बच्चे होटलों में प्लेटें धोने, मूँगफली बेचने आदि का काम करते हैं।

अन्तरराष्ट्रीय खाद्यनीति शोध संस्थान और कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये 'वैश्विक भूख सूचकांक' (ग्लोबल हंगर इण्डेक्स) 2008 के अनुसार, दुनिया के 88 देशों में भारत का 66वाँ स्थान है। अफ़्रीकी देशों और बांग्लादेश को छोड़कर भूखे लोगों के मामले में भारत सभी देशों से पीछे है। दुनिया में कुल 30 करोड़ लोग भुखमरी के शिकार हैं और 2015 तक भूख की समस्या मिटा देने के संयुक्त राष्ट्र संघ के आह्वान के बा. वजूद 2030 तक इनकी संख्या बढ़कर 80 करोड़ हो जाने का अनुमान है। इस आबादी का 25 प्रतिशत हिस्सा सिर्फ़ भारत में रहता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार, पूरी दुनिया में 85 करोड़ 50 लाख लोग भुखमरी, कुपोषण या अल्पपोषण के शिकार हैं। इनमें से लगभग 35 करोड़ आबादी भारतीय है। हर तीन में से एक (यानी लगभग 35 करोड़) भारतीयों को प्राय: भूखे पेट सोना पड़ता है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006